प्रकाशक :—
मंत्री, श्री आत्म जागृति कार्यालय
ब्यावर (राज०)

प्रथमावृति १०००	}	मूल्य ।।।=) आने

प्रस्तावना



'धर्म' शब्द संस्कृत की 'धृ' धातु से बना है। धर्म का अर्थ है—धारण करना। अर्थात् जो संसार को धारण करे, उसे नष्ट होने से बचावे, वह धर्म है। यदि मनुष्य धर्म से सर्वथा विमुख हो जाएँ अर्थात् परस्पर हिंसा करने लगें, एक दूसरे को मारने लगें तो मानवजाति की क्या दशा हो ? मनुष्य जाति या तो समाप्त हो जाय या मनुष्यलोक नरक के समान बन जाय। अहिंसा धर्म मानवसमाज को नष्ट होने से बचाता है। इसी प्रकार सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह आदि भी धर्म हैं। उनसे संसार में व्यवस्था तथा शान्ति स्थापित होती है। जिससे झगड़ा, द्वेष या अशान्ति का प्रसार हो वह धर्म नहीं, अधर्म है।

धर्म की उपर्युक्त व्याख्या करने के बाद हमारे सामने प्रश्न खड़ा होता है—यदि धर्म शान्ति का कारण है तो उससे अशान्ति क्यो, कैसी हुई है ? धर्म के नाम पर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपना शत्रु क्यो समझ रहा है ? धर्म का इतिहास रक्तरञ्जित क्यों है ?

इन सब प्रश्नो के उत्तर मे यही कहा जाएगा कि धर्म किसीको लड़ना नहीं सिखाता। धर्म तो शाश्वत शान्ति तथा सुख के लिए ही है किन्तु उसका बाह्य-आचार अपने देश और काल की समस्याओ को सुलझाने के लिए तदनुकूल रूप मे प्रकट होता है। धीरे-धीरे परिस्थिति बदल जाती है। लोग धर्म के असली रहस्य को न समझकर उसके बाह्यरूप को ही पकड़े रहते हैं। परिणामस्वरूप

धर्म के वाह्यरूप में समयानुसार परिवर्त्तन नहीं हो पाता। समय और परिस्थितियों के पलट जाने पर भी जब बाह्यरूप में परिवर्त्तन नहीं होता तो वह उस परिस्थिति मे अनुपयुक्त हो जाता है और उसका स्थान कोई उपयुक्त व्यवस्था ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार से पन्थ का जन्म होता है और फिर प्राचीन एवं नवीन पन्थ में संघर्ष छिड़ जाता है। वही पन्थ हिंसा तथा द्वेष का कारण बनता है। धर्म प्रेम करना सिखाता है, पन्थ घृणा करना। धर्म अन्तर्मुखी होता है, पन्थ बहिर्मुखी। धर्म आत्मा के विकास पर जोर देता है और पन्थ वेश तथा वाह्य क्रियाकाण्ड पर। धर्म का आधार है विश्वबन्धुत्व, पन्थ का सकुचित सम्प्रदायवाद। धर्म विकास की ओर ले जाता है, पन्थ संकोच की ओर। साधारण लोग पन्थ की बुराइयों को धर्म की बुराई समझते हैं और इसी कारण धर्म की बदनामी होती है।

उपर्युक्त बाते जान लेने के बाद हमारे सामने यह प्रश्न नहीं रहता कि कौनसा धर्म सच्चा है और कौनसा झूठा। जिससे मानवहित हो उसी का नाम धर्म है। शेष सभी पन्थ या सम्प्रदाय हैं। धर्म के नाम से प्रचलित प्रत्येक विचारधारा को हमें मानवहित की कसौटी पर परखना चाहिए।

इस दृष्टि से जैन विचारधारा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। विश्वबन्धुत्व तथा मानवविकास के लिए आवश्यक सभी तत्त्व उस में विद्यमान है।

संसार में दो प्रकार का संघर्ष चल रहा है—स्वार्थों का संघर्ष तथा विचारों का संघर्ष। राष्ट्रों में होने वाले महायुद्ध स्वार्थों के संघर्ष से उत्पन्न होते हैं। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की भूमि या दूसरी वस्तुओ पर अधिकार जमाना चाहता है। दूसरा राष्ट्र इस बात को नहीं सह सकता। परिणामस्वरूप दोनो में ठन जाती है।

इस संघर्ष को मिटाने के लिए जैनदर्शन मे अहिंसा तथा त्याग का उपदेश दिया है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकताएँ घटानी चाहिए। बाह्य वस्तुओं का मोह छोड़ना चाहिए। यहाँ तक कि अपने शरीर का भी मोह छोड़ देना चाहिए। फिर स्वार्थों का प्रश्न ही नहीं रहता। मनुष्य जितना मोह को बढाता है उतना ही अधिक दुखी होता है। मोह और लोभ के कारण ही दूसरों के स्वार्थों को कुचलना चाहता है। इसके साथ साथ यह भी समझना चाहिए कि जिस प्रकार हम सुख और दीर्घ जीवन चाहते है उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी सुख और दीर्घ जीवन चाहता है। इसलिए किसी को कष्ट नहीं देना चाहिए।

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयन्ति णं॥

अर्थात्—सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई भी नहीं चाहता। इसलिए निर्ग्रन्थ मुनि प्राणिवध को पाप समझ कर छोड़ देते हैं।

अहिंसा का अर्थ है—किसी के प्रति बुरी भावना और बुरा व्यवहार न होना और साथ ही सभी के साथ प्रेम और मित्रता की भावना और व्यवहार होना। अपनी आवश्यकताओं के समान दूसरो की आवश्यकताओ का भी ध्यान रखना। अहिंसा धर्म जैनदर्शन की पहली विशेषता है। संसार मे इसका प्रचार होने पर स्वार्थों का संघर्ष नहीं रह सकता।

जैनदर्शन की दूसरी विशेषता 'स्याद्वाद' है। ससार मे बहुत से लोग एक ही जाति तथा प्रदेश के होने पर भी विचार भेद के कारण लड़ पड़ते हैं। धर्म के नाम से जो लड़ाइयाँ हुई हैं उनका कारण विचारभेद ही हैं। किन्तु वास्तव में देखा जाय

तो वहाँ विचारभेद की जगह विचार संबंधी दुराग्रह का भेद होता है। यदि हम एक दूसरे के विचार या दृष्टिकोण को समझ लेवें तो झगड़े की बात नहीं रहती। स्याद्वाद इसी का प्रतिपादन करता है। सांख्यदर्शन प्रत्येक वस्तु को नित्य मानता है। बौद्धदर्शन क्षणिक मानता है। स्याद्वाद दोनों दृष्टिकोणों का समन्वय करता है कि प्रत्येक वस्तु द्रव्य की अपेक्षा नित्य है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य या क्षणिक। मनुष्य एक वस्तु को जब अच्छी-बुरी, छोटी-बड़ी, हल्की-भारी या किसी भी रूप में कहता है तो वह अपने ही दृष्टिकोण से कहता है। हमारे मन में बीस सेर भारी वस्तु घूमती है तो दस सेर वाली को हम हल्की कह देते हैं। जब पाँच सेर वाली घूमती है तो उसी को हम भारी कह देते हैं। इसी प्रकार संसार का सारा व्यवहार विविध अपेक्षाओं या दृष्टिकोणों पर आश्रित है। इसी को नयवाद भी कहते हैं। जैन-दर्शन की यह विशेषता है कि इसमें उस नय को मिथ्या कहा गया है जो दूसरे को झूठा कहता है। जो दूसरे को भी दृष्टिभेद से सत्य मानता है वही सच्चा है। जो सिद्धान्त दूसरी मान्यताओं के प्रति इतना आदर रखता हो कि उन्हे झूठा कहने वाले को ही झूठा बतावे वह अशान्ति का कारण हो ही नहीं सकता। रत्न-प्रभभसूरि ने कितना सुन्दर कहा है—

अहो चित्रं चित्रं तव चरितमेतन्मुनिपते।
स्वकीयानामेषां विविधविषयव्याप्तिवशिनाम्॥
विपक्षापेक्षाणां कथयसि नयानां सुनयताम्।
विपक्षक्षेप्तॄणां पुनरिह विभो! दुष्टनयताम्॥

जैनदर्शन की तीसरी विशेषता कर्मवाद है। इसके अनु-सार जीव सुखों का कर्त्ता भी स्वयं है और भोक्ता भी स्वयं है।

फल देने वाला या संसार पर नियंत्रण करने वाला कोई एक सर्व-शक्तिमान् पुरुष नहीं है। एक व्यक्ति आँखें वन्द करके कुएँ की ओर चल पड़ता है तो अपने को कुएँ में डालने वाला और उससे होने वाले कष्टों का निर्माता वह स्वयं है। इसके लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। जो व्यक्ति जहर खा लेता है वह अपनी मृत्यु का विधाता स्वय है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है और फल भोगने में परतन्त्र है, इसका यही अर्थ है कि जब कर्म किया है तो फल अवश्यम्भावी है। कारण होने पर कार्य अवश्य होता है। जो पत्थर हाथ से छूट गया वह तो गिरेगा ही। हम तभी तक स्वतन्त्र है जब तक वह हमारे हाथ में है। इसलिए फल-भोग के लिए किसी दूसरे नियंता की आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार जैनदर्शन संसार को किसी एक ईश्वर का बनाया हुआ नही मानता। अनन्त वस्तुओं के समूह का नाम संसार है। हम देखते हैं कि प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई कर्त्ता है। घट का कर्त्ता कुम्भकार है। पट का कर्त्ता तन्तुवाय है। जब हम प्रत्येक वस्तु के कर्त्ता भिन्न-भिन्न रूप में प्रत्यक्ष देख रहे हैं तो किसी एक को सबका कर्त्ता मानना अनावश्यक और युक्तिविरुद्ध है।

संसार को ईश्वर की गुलामी तथा पराधीनता से मुक्त करके जैनदर्शन ने प्रत्येक व्यक्ति को साहस और अपने पैरों पर खड़ा होने का संदेश दिया है।

ईश्वर के भरोसे बैठ कर 'सबके दाता राम' की माला फेरने वाले आलसियों को जैनधर्म कहता है—

"अप्पा कत्ता विकत्ता य सुहाण य दुहाण य।"

अर्थात्–आत्मा सुख और दुखों का कर्त्ता स्वयं ही है। इसके लिए किसी दूसरे का मुँह ताकने की आवश्यकता नहीं है।

"अप्पा मित्तममित्तं य सुप्पट्ठिओ दुप्पट्ठिओ"।

यदि तुम उच्चे मार्ग पर चलोगे तो तुम्हारा आत्मा ही तुम्हारा मित्र है। बुरे मार्ग पर चलोगे तो यही आत्मा तुम्हारा शत्रु बन जाएगा।

अप्पा नई वेअरणी, अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहा घेणू, अप्पा मे नंदणं वणं॥

आत्मा ही वैतरणी नदी है और आत्मा ही कूटशाल्मली वृक्ष है। आत्मा कामधेनु है और आत्मा ही नन्दनवन है।

इसी बात को कर्मयोग का मन्त्र फूँकने वाली गीता मे भी पाते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत्।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुः, आत्मैव रिपुरात्मनः॥

प्रत्येक आत्मा अनन्त शक्तियों का पुँज है। उसमे अनन्त वीर्य है, अनन्त ज्ञान है। वह ज्योतिस्वरूप है। वह क्या नही कर सकता? आवश्यकता है केवल अपनी दबी हुई शक्ति को विकसित करने की, अपने आपको पहिचानने की। आत्मा को दीन, हीन, निर्बल, अशक्त नीच आदि कहना उसका अपमान करना है। ईश्वरवाद अकर्मण्यता को सिखाता है। जैनदर्शन का कर्मवाद विश्व को कर्मठ बनाता है। वह आत्मा को स्वयं परमात्मा बनने की प्रेरणा करता है।

जैनदर्शन की पाँचवीं विशेषता आध्यात्मिक साम्यवाद है। जैनदर्शन आत्मा को महत्त्व देता है, जड़ शरीर को नही।

जैसी आत्मा एक उच्चकुल के ब्राह्मण में है वैसी ही नीच कहे जाने वाले शूद्र में। जात पाँत, ऊँच नीच का आत्मा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। सभी को आत्मविकास का समान अधिकार है। चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुए हरिकेशी मुनि और उत्तम ब्राह्मण कुल में उत्पन्न इन्द्रभूति गौतम जैनपरम्परा मे समान रूप से श्रद्धा के पात्र बने और अपनी आत्मिकसाधना के कारण समान माने गए। इसी प्रकार लिंग भेद का भी आत्मा के साथ कोई सम्बन्ध नही है। स्त्री और पुरुष के शरीर मे भेद है किन्तु आत्मा मे कोई भेद नहीं है। इसलिए आध्यात्मिक क्षेत्र मे दोनो समान हैं।

'न स्त्रीशूद्रौ वेदमधीयाताम्' कहकर मनुष्य और मनुष्य मे भेद डालने का जैनदर्शन ने प्रबल विरोध किया है। उसका तो कहना है कि उच्चता और नीचता कर्म पर आश्रित है। जन्म से कोई ऊँच-नीच नहीं होता।

कम्मुणा बम्हणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
कम्मुणा वइसो होई, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥

अहिंसावाद, स्याद्वाद, कर्मवाद, निरीश्वरवाद और आध्यात्मिक साम्यवाद के रूप मे जैनसंस्कृति ने संसार को अमूल्य भेट दी है। मानवकल्याण के लिए इनकी जैसी आवश्यकता पहले थी, उससे भी अधिक आज है।

किन्तु अपने घर में बैठकर अपने सिद्धान्तो की प्रशंसा कर लेने मात्र से काम नहीं चलता। आवश्यकता इस बात की है कि इन सिद्धान्तो का अधिक से अधिक प्रचार किया जाय और जनता का पथप्रदर्शन किया जाय।

साहित्य-प्रकाशन प्रचार का महत्त्वपूर्ण साधन है। सरल भाषा में विश्वबन्धुत्व की भावना रखकर रचा गया साहित्य मानवहित के लिए बहुत कुछ कर सकता है।

मुनि श्री मधुकरजी ने ऐसा साहित्य तैयार करने का निश्चय किया है, जो सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से अछूता हो और विशुद्ध मानवधर्म का स्वरूप जगत् के समक्ष प्रस्तुत करे। जो विश्वबन्धुत्व तथा विश्वप्रेम की भावना से ओतप्रोत हो। ऐसे साहित्य की संसार को बड़ी आवश्यकता है। भगवान् महावीर की वाणी में यह सब तत्त्व पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। अतः उनके उपदेशों में से आधुनिक ढग से मुनिश्री ने कुछ संकलन किये हैं।

प्रस्तुत पुस्तक आचाराङ्ग सूत्र के चौथे, पाँचवें, छठे और आठवें अध्ययन के चुने हुए वाक्यों का संग्रह है। पहले से लेकर तीसरे अध्ययन तक का संकलन "जागरण" के नाम से प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत पुस्तक आत्मोन्नति का सन्देश है। उससे मिलने वाली प्रेरणा ही उसका सबसे बड़ा परिचय है।

मुनि श्री इस परिश्रम और पथप्रदर्शन के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है, जनता प्रस्तुत पुस्तक से पूरा लाभ उठाएगी।

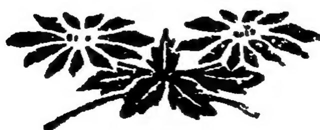
रक्षाबन्धन २००४
इन्द्रलोक, भिवानी

इन्द्रचन्द्र शास्त्री एम. ए.
शास्त्राचार्य, वेदान्तवारिधि, न्यायतीर्थ
अध्यक्ष, संस्कृत तथा हिन्दी विभाग
वैश्य कालेज, भिवानी

धर्म-पथ

विषयानुक्रम

नं०	नाम	पृष्ठ
१	शाश्वत धर्म	१—१०
२	उद्बोध	११—२२
३	ज्ञानी और अज्ञानी	२३—३२
४	तत्त्व-दर्शन	३३—४०
५	राजमार्ग	४१—५०
६	कायर	५१—५८
७	महामुनि	५९—७४
८	गुरुकुल	७५—८२
९	प्रवचन	८३—९४
१०	महाप्रयाण	९५-११०
११	दीपमाला	१११-१२०



श्रीमान् रेखचन्दजी साहिब पारख

जीवन-परिचय

आप एक अच्छे सम्पन्न और व्युत्पन्न उत्साही नवयुवक हैं। आपकी जन्मभूमि तीवरी (मारवाड़) है। आपके पिताजी श्रीमान् जेठमलजी साहिब पारख भी एक बहुत समझदार और दीर्घदृष्टि सद्गृहस्थ हैं।

श्रीमान् पारखजी अपने पिता के एक मात्र पुत्र हैं। आपका व्यापार-व्यवसाय आदि सारा कारोबार चांदा (सी० पी०) में चल रहा है। इसलिये आप अपने पिताजी आदि सारे परिवार के साथ चांदा ही रहते हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती मदनकुँवर बाई भी एक सुशिक्षिता व संस्कारशीला महिला हैं। सन्तानो मे आपके तीन पुत्रियाँ शारदा, शान्ता व सुशीला हैं।

आपने अपने स्वर्गीय काकाजी श्री धनराजजी पारख की पुण्य-स्मृति मे इस पुस्तक के प्रकाशन मे २००) रुपये उपहाररूप में दिए हैं एतदर्थ आपको धन्यवाद दिया जाता है और आशा करते है कि आगे भी आप इसी तरह से साहित्य-सेवा बजाते रहेंगे।

—प्रकाशक



श्रीमान् रेखचन्दजी साहिब पारख



[आपका जीवन परिचय सामने के पृष्ठ पर देखिए।]

* णमोत्थु णं तस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स *

धर्म-पथ



★ शाश्वत-धर्म ★

सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता,
न हंतव्वा, न अज्जावेयव्वा, न परियावेयव्वा,
न परिघित्तव्वा, न उद्दवेयव्वा ।

(१)

से वेमि-जे अईया, जे य पडुप्पन्ना, जे य आगमिस्सा अरहन्ता भगवन्तो ते सव्वे एवमाइक्खंति, एवं भासंति, एवं पण्णविंति एवं-परूविंति :—

सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, न हंतव्वा, न अज्ञावेयव्वा, न परिघित्तव्वा, न परियावेयव्वा, न उद्दवेयव्वा। एस धम्मे सुद्धे, निइए, सासए, समिच्च लोगं खेयन्नेहिं पवेइए, तं जहा-उट्ठिएसु वा अनुट्ठिएसु वा, (उवट्ठिएसु वा, अणुवट्ठिएसु वा) उवरय-दंडेसु वा, अणुवरय-दंडेसु वा, सोवहिएसु वा अणुवहिएसु वा, संजोग-रएसु वा, असंजोग-रएसु वा। तच्चं चेयं, तहा चेयं, अस्सिं चेयं पवुच्चइ।

(२)

आघाइ नाणी इह माणवाणं संसार-पडिवण्णाणं संबुज्झ-माणाणं विन्नाणपत्ताणं। अट्टा वि संता अदुवा पमत्ता। अहा-सच्चमिणं-ति बेमि। नाणागमो मच्चुमुहस्स अत्थि, इच्छा-पणीया वंका ऽनिकेया काल-ग्गहीया निचए निविट्ठा पुढो पुढो जाइं पकप्पयंति।

(१)

संसार मे जितने अरिहन्त हुए हैं, जितने विद्यमान हैं और जितने होंगे—सभी का यही कहना है, यही उपदेश है, यही प्रज्ञप्ति है और यही सिद्धान्त है कि :—

किसी प्राणी, भूत, जीव और सत्व को न पीटना चाहिए, न सताना चाहिए, न पकड़ना चाहिए, न कष्ट पहुँचाना चाहिए और न मारना चाहिए। यह शुद्ध, नित्य एवं शाश्वत-धर्म है। आत्मज्ञ महर्षियो ने संसार के स्वरूप को अच्छी तरह जानकर यह बताया है। यह उपदेश सभी के लिए है। चाहे वह धर्माचरण मे लगा हुआ हो या न लगा हुआ हो। धर्मश्रवण की इच्छा रखता हो या न रखता हो। उसने जीव-हिंसा को छोड़ा हो या न छोड़ा हो। गृहस्थ हो अथवा साधु। योगी हो अथवा भोगी। यही धर्म सत्य है। यही तथ्य है। यही शास्त्रो में प्रतिपादित है।

(२)

भगवान् ने संसार मे रहे हुए सरल-बोधि तथा ज्ञानी जीवों के लिए यही धर्म बताया है। वे दुःखी, शोकाकुल तथा प्रमत्त होने पर भी इस यथार्थ धर्म की आराधना कर सकते हैं। मृत्यु से किसी का छुटकारा नहीं। फिर भी अज्ञान जीव इच्छा के दास बन कर माया रचते हैं और शरण-रहित होने के कारण काल के द्वारा पकड़ लिये जाते है। कर्मजाल मे फँसे हुए वे पामर जीव विविध प्रकार के जन्म तथा मरण प्राप्त करते रहते हैं।

(३)

इहमेगेसिं तत्थ तत्थ संथवो भवइ, अहोववाइए फासे पडिसंवेयंति, चिट्ठं कम्मेहिं कूरेहिं चिट्ठं परिचिट्ठइ, अचिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं नो चिट्ठं परिचिट्ठइ। एगे वयंति अदुवा वि नाणी नाणी वयंति अदुवा वि एगे।

(४)

आयावंती केयावंती लोगंसि समणा य माहणा य पुढो विवायं वयंति "से दिट्ठं च णे, मयं च णे, विन्नायं च णे, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ सु-पडिलेहियं च णे— सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता,— हंतव्वा, अज्जावेयव्वा, परियावेयव्वा, परिघित्तव्वा, उद्दवेयव्वा, एत्थंपि जाणह नत्थेत्थ दोसो"

"अणारिय-वयण-मेयं।"

(५)

तत्थ जे आरिया ते एवं वयासी—"से दुद्दिट्ठं च भे, दुस्सुयं च भे, दुम्मयं च भे, दुव्विण्णायं च भे–उड्ढं-अहं तिरियं दिसासु सव्वओ दुप्पडिलेहियं च भे, जे णं तुब्भे एवमाइक्खह, एवं भासह, एवं परूवेह, एवं पण्णवेह— सव्वे पाणा, सव्वे जीवा, सव्वे भूया, सव्वे सत्ता—हंतव्वा, अज्जावेयव्वा, परियावेयव्वा, परिघित्तव्वा, उद्दवेयव्वा एत्थं पि जाणह नत्थेत्थ दोसो"

"अणारियवयणमेयं।"

(३)

शास्त्रज्ञों और सर्वज्ञों ने कहा है कि :—

कुछ लोगो का नरक तिर्यञ्च आदि गतियों से बहुत परिचय होता है। वे वहाँ † औपपातिक जन्म के कारण होने वाले दुःखों को भोगते रहते हैं। जो अधिक क्रूर कर्म करते हैं वे वहाँ लम्बे समय तक ठहरते हैं। जो अधिक क्रूर कर्म नहीं करते वे वहाँ लम्बे समय तक नहीं ठहरते।

शास्त्रज्ञ और सर्वज्ञ एक ही बात कहते हैं।

(४)

संसार में बहुत से श्रमण तथा ब्राह्मण दूसरी ही बात कहते हैं। उनका कथन है कि—"हमने देख लिया, सुन लिया, विचार लिया, अच्छी तरह जान लिया और ऊपर, नीचे तथा दाँयें-बाँयें सभी दिशाओं में जाँच-पड़ताल भी कर ली कि प्राण, भूत, जीव और सत्वों को मारने, तङ्ग करने, कष्ट देने, बाँधने तथा डराने में कोई दोष नहीं है।"

किन्तु ये अनार्य-वचन हैं।

(५)

आर्य तो इस प्रकार कहते हैं कि—तुम्हारा देखना, सुनना, विचारना, जानना सभी मिथ्या है। ऊर्ध्व, अधः तथा तिर्यक् दिशा मे तुम्हारी जाँच-पड़ताल भी मिथ्या है।

क्योंकि तुम यह कह रहे हो कि—"प्राण, भूत, जीव और सत्वो को मारने, तङ्ग करने, कष्ट देने तथा डराने में कोई दोष नहीं है।"

तुम्हारा यह कथन अनार्य-वचन है।

---

† देव और नरक गति में होने वाला जन्म।

(६)

वयं पुण एवमाइक्खामो, एवं भासामो, एवं परूवेमो एवं पण्णवेमो—सव्वे पाणा, सव्वे जीवा, सव्वे भूया, सव्वे सत्ता, न हंतव्वा, न अज्जावेयव्वा, न परियावेयव्वा, न परिघित्तव्वा, न उद्दवेयव्वा एत्थं पि जाणह नत्थेत्थ दोसो 'आरिय-वयण-मेयं।'

(७)

पुव्वं निकायससयं पत्तेयं पत्तेयं पुच्छिस्सामो-हं भो पावाउया! किं भे सायं दुक्खं उदाहु असायं? समिया पडिवन्ने या वि एवं बूया—सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं सत्ताणं, असायं अपरिनिव्वाणं महब्भयं दुक्खं ति बेमि।

(८)

जस्स नत्थि इमा जाई
अण्णा तस्स कुओ सिया?

(९)

तं आइत्तु न निहे न निक्खिवे,
जाणित्तु धम्मं जहा तहा।
दिट्ठेहिं निव्वेयं गच्छिज्जा
नो लोगस्सेसणं चरे।

(६)

हम तो यही कहते हैं, व्याख्यान देते हैं, सिद्धान्तरूप से घोषित करते हैं कि किसी भी प्राण, भूत, जीव और सत्व को न मारना, न तङ्ग करना, न कष्ट देना, न बाँधना और न डराना ही चाहिए। यही निर्दोष और आर्य-सिद्धान्त है।

(७)

सिद्धान्त की व्यवस्था करके हम प्रत्येक से पूछेंगे—हे वादियो! तुम्हें दुःख अच्छा लगता है या बुरा? जब वे अच्छी तरह मान जाएँ कि हमे दुःख बुरा लगता है तो उनसे कहना चाहिए-सभी प्राण, भूत, जीव और सत्वो को भी दुःख बुरा लगता है। वह सभी के लिए अशान्तिकर तथा महाभयदायी है।

यही मै कहता हूँ।

(८)

जो साधक भोगों की एपणा नहीं करता, वह दूसरी सावद्य-प्रवृत्ति क्यों करेगा? अर्थात् नहीं करेगा।

(९)

साधक धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझकर संसार के अनुकूल तथा प्रतिकूल विषयों से विरक्त रहे और लौकिक विषयभोगों की इच्छा न करे।

(१०)

समेमाणा पलेमाणा
पुणो पुणो जाइं पकप्पंति ।

(११)

दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं,
जं एयं परिकहिज्जइ ।

---

(१०)

संसार में फँसे रहने वाले लोग बार-बार जन्म-मरण प्राप्त करते रहते हैं।

(११)

मैंने जो यह बात कही है, वह देखी, सुनी, मनन की हुई तथा जानी-बूझी है।





उ द्दे बो ध

तुमंसि नाम सच्चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि ।
तुमंसि नाम सच्चेव जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि ।
तुमंसि नाम सच्चेव जं परियावेयव्वं ति मन्नसि ।
तुमंसि नाम सच्चेव जं परिघित्तव्वं ति मन्नसि ।
तुमंसि नाम सच्चेव जं उद्दवेयव्वं ति मन्नसि ।

(१)

अहो य राओ य जयमाणे धीरे
सया आगय-पएणाणे पमत्ते वहिया पास।
अप्पमत्ते सया पर-कमिज्जासि त्ति वेमि।

(२)

उवेह एणं वहिया य लोगं।
से सव्व-लोगंसि जे कोई विन्नू।
अणु-वीइ पास निक्खित्त-दंडा।

जे केइ सत्ता पलियं चयंति,
नरा-मुयच्चा धम्म-विउ त्ति,
अंज्जू आरंभजं दुक्खमिणं ति णच्चा,

एवमाहु सम्मत्त-दंसिणो ते सव्वे पावाइया,
दुक्खस्स कुसला परिएणमुदा-हरंति,
इति कम्म परिन्नाय सव्वसो॥

(१)

ओ धीर पुरुषो !

संयम की साधना मे दिन और रात सतत प्रयत्न करते रहो। हिताहित का ज्ञान प्राप्त करके धर्म से बाह्य व्यक्तियो को प्रमादी समझो। सदा अप्रमत्त होकर संयम मे शक्ति लगाते रहो।

यही मैं कहता हूँ।

(२)

धर्म-हीन लोगो का संग छोड़ दो, जो ऐसा कहता है वही विज्ञ है। जो लोग मन, वचन और कायरूप दंडो को छोड़ देते हैं, जो कर्मों का नाश करते हैं उन्हें ही विद्वान् मानो। संसार में होने वाले दुःख को हिंसा से ही उत्पन्न हुआ जानकर सज्जन कषायो को छोड़ देते हैं। इस प्रकार वे धर्मज्ञ और सरल होते हैं। सर्वदर्शियो ने कहा है कि वे सभी उत्तम वक्ता है, जो कर्मों को दुःख का कारण जानकर उनके त्याग का उपदेश देते हैं।

(३)

इह आणा-कंखी पंडिए अणिहे, एगमप्पाणं सं-पेहाए,
धूणे सरीरं,
कसेहि अप्पाणं,
जरेहि अप्पाणं,
जहा जुन्नाइं कट्ठाइं हव्ववाहो पमत्थइ,
एवं अत्त-समाहिए अणिहे विगिंच कोहं अविकंपमाणे।

(४)

इमं नि-रुद्धाउयं सं-पेहाए
दुक्खं जाण अदु आगमिस्सं,
पुढो फासाइं च फासे
लोयं च पास वि-फंदमाणं
जे निव्वुडा पावेहिं कम्मेहिं
अनिदाणा ते वियाहिया
तम्हा अति-विज्जो नो
पडि-संजलिज्जासि त्ति बेमि।

(३)

भगवान् की आज्ञा पर चलने वाला पण्डित मोह-रहित होता है। उसे चाहिए कि आत्मा को पुद्गलों से अलग समझ-कर अनासक्त बने और अपनी दुष्ट भावना को कृश और जीर्ण करे। जैसे आग पुरानी लकड़ियो को शीघ्र जला देती है इसी प्रकार समाधिस्थ, आसक्ति-रहित, कपायविजयी तथा दृढ़ रहने वाला साधक कर्मों को नष्ट कर डालता है।

(४)

आयुष्य परिमित है। भावी दुःखो का ध्यान करो। जीव भिन्न-भिन्न प्रकार के कष्टो को भोगते रहते हैं। दुःख से घबराये लोक को इधर-उधर भागते देखकर पाप-कर्म को छोड़ देने वाले और निदान न करने वाले ही शास्त्रो मे आदर्श बताये गये हैं। इसलिए विद्वानो को चाहिए कि कषायों से प्रज्वलित न हो।

यही मैं कहता हूँ।

(५)

आवीलए पवीलए निप्पीलए

जहित्ता पुव्व-संजोगं हिच्चा उवसमं,

तम्हा अविमणे वीरे, सारए, समिए, सहिए सया जए।

दुरणुचरो मग्गो वीराणं,

अनियट्ट-गामीणं विगिंच मंस-सोणियं।

एस पुरिसे दविए वीरे आयाणिज्जे वियाहिए

जे धुणाइ समुस्सयं वसित्ता बंभचेरंसि।

(६)

पासह !

एगे रूवेसु गिद्धे परि-णिज्ज माणे,

एत्थ फासे पुणो पुणो।

आयावंती केयावंती लोगंसि आरंभजीवी,

एएसु चेव-आरंभजीवी।

एत्थ वि बाले परिपच्चमाणे रमइ—

पावेहिं कम्मेहिं, असरणं सरणं ति मन्नमाणे।

(५)

स्त्री, पुत्रादि के पूर्व परिचय को छोडकर तथा उपशम को प्राप्त करके मुनि तपस्या द्वारा अपने शरीर को सुखा डाले। वीर पुरुष सांसारिक भोगों से विरक्त रहता है, संयम में लीन रहता है, समितियो का पालन करता है और ज्ञानादि गुणों से युक्त होता है। पौद्गलिक अभिवृद्धि को क्षीण कर डालने वाले ब्रह्मचारी को चाहिए कि आत्मकल्याण के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। मोक्ष के यात्री वीरों का मार्ग दुर्गम है। रक्त और माँस को सुखा डालने वाला संयमी ही वीर तथा आदर्श बताया गया है।

(६)

देखो,

जो लोग रूप आदि इन्द्रिय-विषयो मे आसक्त हैं, वे बार-बार नरकादि दुःखो को भोगते रहते हैं। लोक मे जितने आरंभ-जीवी हैं वे सभी इन्हीं दुःखो मे फँसे रहते हैं। मूर्ख इन्हीं में पचता रहता है। फिर भी पाप करने मे आनन्द मानता है। अशरण को भी शरण मानता है।

(७)

अट्टा पया माणव !

कम्म-कोविया,

जे अणुव-रया अविज्जाए,

पलि-मुक्ख-माहु,

आवट्टमेव अणु-परि-यट्टंति-त्ति बेमि ।

(८)

तुमंसि नाम सच्चेव जं 'हंतव्वं' ति मन्नसि ।

तुमंसि नाम सच्चेव जं 'अज्जावेयव्वं' ति मन्नसि ।

तुमंसि नाम सच्चेव जं 'परियावेयव्वं' ति मन्नसि ।

तुमंसि नाम सच्चेव जं 'परिघित्तव्वं' ति मन्नसि ।

तुमंसि नाम सच्चेव जं 'उद्दवेयव्वं' ति मन्नसि ।

'अंजू चेयं पडि-बुद्ध जीवी'

तम्हा न हंता न विघायए ।

अणु-संवेयणं अप्पाणेणं

'जं हंतव्वं ति नाभि-पत्थए ।'

(७)

हे मानव !

क्रोधादि कषायो से व्याकुल जो लोग पाप-कर्म करने में कुशल हैं, विषयभोगो में फँसे हैं और अज्ञान में ही मुक्ति मानते हैं वे सदा संसार-चक्र में परिभ्रमण करते रहते हैं।

(८)

तुम जिसे मारना चाहते हो वह तुम ही हो। तुम जिस पर शासन करना चाहते हो वह तुम ही हो। जिसको कष्ट देना चाहते हो वह भी तुम ही हो। जिसको बाँधना चाहते हो वह भी तुम ही हो। जिसके प्राण लेना चाहते हो वह भी तुम स्वयं ही हो।

सरल और ज्ञानी पुरुष ही ऐसी समझ रखते हैं। इसलिए न किसी को स्वयं मारे और न दूसरो को मारने के लिए कहे। जो व्यक्ति दूसरों को मारता है उसे स्वयं वैसा ही फल भोगना पड़ता है। इसलिए किसी को मारने की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए।

आयाण भो ! सुस्सूस भो ! धूय-वायं पवेयइस्सामि।
इह खलु अत्तत्ताए तेहिं तेहिं कुलेहिं— अभि-सेएण—
अभि-संभूया, अभि-संजाया
अभि-निव्वुडा, अभि-संवुडा
अभि-संवुद्धा, अभि-निक्खंता
अणु-पुव्वेण महा-मुणी।

(१०)

तं परक्कमंतं परिदेव-माणा,
"माणे चयाहि" इति ते वयंति,
छंदोवणीया अज्झोववन्ना
अक्कंद-कारी जणगा रुयंति
अतारिसे मुणी ओहंतरए
जणगा जेण विघजढा, सरणं तत्थ नो समेइ
कहं नु नाम से तत्थ रमइ ?
एयं नाणं सया समणुवासिज्जासि त्ति बेमि।

(११)

तम्हा संगं ति पासह।
गंथेहिं गढिया नरा विसन्ना काम-क्कंता।
तम्हा लूहाओ नो वित्तसेज्जा॥

---

(९)

जीवो ! ध्यान दो। सुनो।

मैं तुमको कर्म-मल धोने का उपाय वताता हूँ। इस संसार में वहुत से जीव अपने कर्मों के फलस्वरूप माता-पिता के संयोग से गर्भ मे आते हैं, उत्पन्न होते हैं, वड़े होते हैं, ज्ञान प्राप्त करते हैं। फिर संसार-चक्र से निकल कर क्रम से महामुनि वन जाते हैं।

(१०)

जिस समय वे घर-वार छोड़ने के लिए तैयार होते हैं तो घर वाले रोते हुए कहते हैं :—"हमें मत छोड़ो। हम तुम्हारी इच्छानुसार चलते हैं। तुमसे स्नेह करते हैं।" पिता आदि जोर-जोर से रोते हैं। वे कहते हैं—'ऐसा भी कोई मुनि संसार को पार कर सकता है, जिसने माता-पिता को छोड़ दिया।'

"किन्तु दृढ़ निश्चय वाला धीर पुरुष उनकी वातों में नहीं आता।" उसका मन अव संसार मे नहीं लगता।

हे मुनियो, इस ज्ञान को सदा याद रखना। इसी के अनुसार चलना। यही मैं कहता हूँ।

(११)

हे मुनियो !

सांसारिक विषयों की आसक्ति छोड़ दो। धन-सम्पत्ति में मोहित प्राणी अनेक कामनाओं से घिर कर दुःखी रहते हैं। इसलिए मुनि को संयम से नहीं डिगना चाहिए।





ज्ञानी और अज्ञानी

से किट्टइ तेसिं समुट्ठियाणं निक्खित्तदंडाणं,
समाहियाणं पन्नाण-मंताण इह मुत्ति-मग्गं ।
एवमवि एगे महावीरा विपरक्कमंति,
पासह एगे अवसीयमाणे अणत्त-पन्ने ।

(१)

से हु पन्नाणमंते बुद्धे आरंभोवरए सम्ममेयं ति—

पासह

जेण बंधं वहं घोरं परियावं च दारुणं पलिछंदिय
बाहिरगं च सोयं निकम्म-दंसी इह मच्चिएहिं
कम्माणं स-फलं दट्ठूण तओ निज्झाइ वेयवी।

(२)

आवंती केयावंती लोगंसि अणारंभजीवी।

एएसु चेव अणारंभजीवी

एत्थोवरए तं झोसमाणे। 'अयं संधी' ति अदक्खू,
जे इमस्स विग्गहस्स अयं खणे त्ति अन्नेसी।

(३)

आवंती केयावंती लोगंसि अपरिग्गहावंती।
एएसु चेव अपरिग्गहावंती।
सोच्चा वई मेहावी पंडियाण निसामिया।

(१)

जिसने हिंसा करना छोड़ दिया है, वही समझदार है और वही ज्ञानी है। इस बात को ठीक समझो। क्योंकि हिंसक वध, बन्ध तथा भयङ्कर दुःख को प्राप्त करता है। कर्म-बन्ध के बाह्य कारणों को हटाकर मोक्ष को चाहने वाला तथा कर्मों के फल को जानकर उनसे छुटकारा पाने वाला ही ज्ञानी है।

(२)

संसार में जो लोग हिंसादि से अलग हैं, वे गृहस्थों में रहते हुए भी आरम्भ से बचे रहते हैं। सावद्य आरम्भ से निवृत्त होकर कर्मों को क्षीण करते हुए वह धर्म के अवसर को देख लेते हैं। वह इस बात को भी जान लेते हैं कि इस शरीर से धर्म करने का यही क्षण है।

(३)

संसार में जितने अपरिग्रही हैं वे तीर्थकरों की वाणी सुनकर, विवेक-पूर्वक पण्डितों के वचन हृदय में धारण कर और सब प्रकार का परिग्रह छोड़कर ही अपरिग्रही बनते हैं।

(४)

से वसुमं सव्व-समन्नागय-पन्नाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं तं नो अन्नेसी।

जं सम्मं ति पासहा, तं मोणं ति पासहा,
जं मोणं ति पासहा, तं सम्मं ति पासहा।

न इमं सक्कं सिढिलेहिं अद्दिज्जमाणेहिं गुण-सारएहिं वंक-समायारेहिं पमत्तेहिं गारमावसंतेहिं।

(५)

एस महसकम्मा जाणइ पासइ पडिलेहाए नावकंखइ। इह आगइं गइं परिन्नाय।

(६)

ओवुज्झमाणे इह माणवेसु आघाइ से नरे
जस्स इमाओ जाइओ सव्वओ सुपडि-लेहिआओ भवंति,
आघाइ से नाण-मणेलिसं।
से किट्टइ तेसिं समुट्ठियाणं निक्खित्तदंडाणं समाहियाणं पन्नाण-मंताणं इह मुत्तिमग्गं। एवमवि एगे महावीरा विपरक्कमंति,
पासह एगे अवसीयमाणे अणत्त-पन्ने।

(४)

तपोधन (संयमरूपी धन वाला) मुनि †सम्यग्ज्ञानयुक्त आत्मा के द्वारा अकरणीय पाप-कर्म नहीं करता। इस प्रकार के सम्यक्त्व को ही मुनिव्रत समझो। मुनिव्रत इस सम्यक्त्व से भिन्न नहीं है, यह जानो। यह सम्यक्त्व शिथिल, मोह मे फँसे हुए, इन्द्रिय-विषयो का स्वाद लेने वाले, मायावी तथा प्रमादी गृहस्थो द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता।

(५)

महापुरुष कर्मस्रोत को रोकने के लिए संयम अङ्गीकार करते हैं। वे आत्म-हित को जानते हैं, देखते हैं।

संसार के आवागमन को अच्छी तरह जानकर वे किसी भी वस्तु की आकांक्षा नहीं करते।

(६)

परोपकार मे लगे हुए ‡गीतार्थ मुनि धर्म का यथार्थ स्वरूप जानकर जनता मे उसका प्रचार करते है। जो एकेन्द्रिय आदि जातियो को अच्छी तरह जानता है वही अनुपम ज्ञान का उपदेश दे सकता है। वही उन प्रकृष्ट ज्ञान वाले, समाधिस्थ, हिंसा से निवृत्त तथा पूर्ण संयमी महापुरुषो के बताये मुक्ति-मार्ग का प्रतिपादन कर सकता है। बहुत से महापराक्रमी पुरुष उस मार्ग पर चलते है। कुछ अज्ञान उसी मार्ग मे दुःखी होने लगते हैं।

---

† सम्यग्ज्ञान—जो ज्ञान आत्म-विकास में सहायक है वह।

‡ वह साधु जो आचार-विचार सम्बन्धी मर्यादाओं को अच्छी तरह जानता है।

(७)

आवंती केयावंती लोगंसि विप्परामुसंति अट्ठाए
अनट्ठाए वा।
एएसु चेव विप्परामुसंति। गुरू से कामा। तओ से
मारस्स अंतो, जओ से मारस्स अंतो तओ से दूरे।
नेव से अंतो नेव से दूरे।

(८)

से पासइ फुसियमिव कुसग्गे पणुन्नं निवइयं वाएरियं–
एवं वालस्स जीवियं मन्दस्स अवियाणओ।
कूराइं कम्माइं वाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण विप्परियास-
मुवेइ, मोहेण गब्भं मरणाइं एइ,
"एत्थ मोहे पुणो पुणो।"

(९)

इह-मेगेसिं एगचरिया भवइ।
से वहुकोहे, वहुमाणे, वहुमाए, वहुलोभे, वहु-रए,
वहु-नडे, वहु-सढे, वहुसंकप्पे, आसव-सत्ती, पलि-ओछन्ने
उट्ठियवायं पवयमाणे—'मा मे केइ अदक्खू।'
अन्नाणपमाय-दोसेणं सययं मूढे धम्मं न जाणइ।

(७)

इस जगत मे जो लोग सप्रयोजन अथवा निष्प्रयोजन जीवों की हिंसा करते हैं वे लोग उन्हीं गतियो मे उत्पन्न होते हैं और मारे जाते हैं। उनमें इन्द्रियसुखों की अभिलाषा बहुत बढ़ी हुई होती है। इसलिए वे मृत्यु के चक्र मे फँसे रहते हैं। मोक्ष उनसे दूर रह जाता है। रोग आदि से घिरे रहने के कारण न तो वे इन्द्रिय-सुखो को भोगते हैं और न उनसे दूर ही रहते हैं।

(८)

ज्ञानी देखते हैं कि इस प्रकार के मूर्ख अज्ञान जीवों का आयुष्य, कुश के अग्रभाग पर स्थित, वात विकम्पित पतनोन्मुख जलबिन्दु के समान अस्थिर है।

फिर भी अज्ञान जीव क्रूर कर्म करते हैं और इसी कारण दुःख प्राप्त करते है, किन्तु विपरीत समझते हैं। मोह के कारण वे जन्म-मरण आदि दुःखो को प्राप्त करते रहते हैं फिर भी बार-बार मोह मे फँसते हैं।

(९)

संसार मे कुछ लोग अकेले विचरते हैं। वे महाक्रोधी, महा-मानी, महामायी, महालोभी, अत्यन्त विषयासक्त, बहुत ढोंगी, बहुत धूर्त्त, नीच विचारो वाले, कर्मबन्ध से युक्त और हिंसक होने पर भी अपने को संयमी कहते है।

"हमें कोई देख न ले" ऐसा सोचकर डरते हुए वे अकेले ही रहते है। अज्ञान, प्रमाद और दोषो मे सदा निमग्न वे लोग धर्म को नहीं जानते।

(१०)

सड्ढिस्स णं समणुन्नस्स संपव्वयमाणस्स
'समियं' ति मन्नमाणस्स एगया समिया होइ।
'समियं' ति मन्नमाणस्स एगया असमिया होइ।
'असमियं' ति मन्नमाणस्स एगया समिया होइ।
'असमियं' ति मन्नमाणस्स एगया असमिया होइ।

(११)

जे पुव्वुट्ठाई नो पच्छानिवाइ, जे पुव्वुट्ठाई
पच्छानिवाई, जे नो पुव्वुट्ठाई नो पच्छानिवाई।
से ति तारिसए सिया, जे परिन्नाय लोग—
मन्नेसयंति।



(१०)

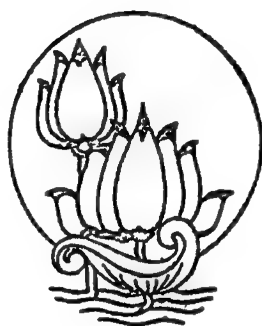
श्रद्धावान् तथा संविग्न भावित जीव, जो दीक्षा लेते समय जिन-प्रवचन को ही सत्य मानते हैं, उनमें से कुछ तो बाद में भी श्रद्धा को स्थिर रखते हैं और कुछ संशयी बन जाते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हे आरम्भ मे दृढ़ श्रद्धा नहीं होती किन्तु बाद मे श्रद्धा वाले हो जाते है और कुछ जैसे थे वैसे ही रह जाते हैं।

(११)

कुछ लोग पहले संयम में उद्यम करते हैं और अंत तक नहीं गिरते। कुछ पहले उद्यम करते हैं किन्तु अंत में गिर जाते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो न पहले उद्यम करते हैं और न अन्त में गिरते हैं।

जो साधु होकर लोक-स्वभाव को जानते हुए भी सांसारिक भोगो को ढूँढ़ते हैं वे वैसे ही हो जाते हैं।







तत्व-दर्शन



तक्का तत्थ न विज्जइ,
मई तत्थ न गाहिया ।



(१)

पुढो छंदा इह माणवा,
पुढो दुक्खं पवेइयं ।

(२)

जहेत्थ कुसलेहिं परिन्ना-विवेगे भासिए ।
चुए हु बाले गब्भाइसु रज्जइ ।
"अस्सिं चेयं पवुच्चइ ।"
रूवंसि वा छणंसि वा 'से हु एगे संविद्धपहे मुणी'
अन्नहा लोगमुवेहमाणे 'इति कम्मं परिन्नाय सव्वसो
से न हिंसइ । संजमई नो पगब्भइ ।
उवेहमाणो पत्तेयं सायं ।

(३)

मुणी मोणं समायाए धुणे कम्मसरीरगं,
पंतं लूहं सेवंति वीरा सम्मत्त-दंसिणो ।
एस ओहंतरे मुणी तिण्णे मुत्ते विरए
वियाहिए त्ति बेमि ।

(१)

संसार मे लोग भिन्न-भिन्न अभिप्राय वाले होते है। उन्हें अपना-अपना दुःख स्वयं ही भुगतना पडता है।

(२)

तीर्थंकर भगवान् ने विचित्र अध्यवसायों के विषय में जैसा प्रतिपादन किया है उसे वैसा ही समझना चाहिए। आगमो मे बताया गया है कि धर्म से गिरा हुआ भोला जीव फिर गर्भ आदि के दुःखो मे फॅस जाता है। जो व्यक्ति रूपादि मे आसक्त होता है वह हिंसा भी करता है। सच्चा मुनि वही है जो लोगों को विपरीत चलते देखकर भी स्वयं विचलित नहीं होता। कर्मो के स्वरूप को जानकर मुनि किसी की भी हिंसा नहीं करता। संयम का पालन करता है, फिर भी गर्व नहीं करता, वह इस बात को जान लेता है कि प्रत्येक प्राणी को सुख प्रिय है।

(३)

मुनि, मौन को अङ्गीकार करके शरीर में रही हुई लिप्सा और वासनाओ को नष्ट कर दे। सम्यक्त्व को अपना लक्ष्य मानने वाले वीर बचा-खुचा और रूखा खाते है। इस प्रकार के मुनि भवसागर को पार कर जाते हैं। वे ही तीर्ण, मुक्त तथा विरक्त कहे गये हैं। यही मैं कहता हूँ।

(४)

से पभूय-दंसी, पभूय-परिन्नाणे उवसंते समिए-सहिए सया जए दट्ठुं विप्पडिवेएइ अप्पाणं किमेस जणो करिस्सइ ? एस से परमाऽऽरामे,

जाओ लोगम्मि इत्थिओ मुणिणा हु एयं पवेइयं ।

(५)

जे आया से विन्नाया,
जे विन्नाया से आया
जेण विजाणाइ से आया ।
तं पडुच्च पडि-संखाए एस आया-वाई ।
समियाए परियाए वियाहिए त्ति बेमि ।

(४)

दीर्घदर्शी, बहुत ज्ञानी, क्षमावान्, पवित्र प्रवृत्ति करने वाला सद्गुणी तथा सदा प्रयत्नशील मुनि स्त्रियो को देखकर विचार करे कि स्त्रियाँ मेरा क्या कल्याण कर सकती हैं? इस संसार में स्त्रियाँ ही मन में मोह उत्पन्न करती हैं। यह सब 'वीर प्रभु' ने बताया है।

(५)

जो आत्मा है वही विज्ञाता है। जो विज्ञाता है वही आत्मा है। क्योंकि ज्ञान के कारण ही आत्मा शब्द का प्रयोग होता है। जो ज्ञान और आत्मा को एक मानता है वही आत्मवादी है। वही पुरुष संयमानुष्ठान कर सकता है। ऐसा कहा गया है।

यही मेरा कथन है।

अच्चेइ जाइ-मरणस्स वट्ट-मग्गं-विक्खाय-रए
सव्वे सरा नियट्टंति।
तक्का तत्थ न विज्जइ, मई तत्थ न गाहिया।
ओए अप्पइट्ठाणस्स खेयन्ने।
से न दीहे, न हस्से, न वट्टे, न तंसे, न चउरंसे,
न परिमंडले।
न किण्हे, न नीले, न लोहिए, न हालिद्दे, न सुक्किले।
न सुरभिगंधे, न दुरभिगंधे।
न तित्ते, न कडुए, न कसाए, न अंबिले, न महुरे।
न कक्खडे, न मउए, न गुरुए, न लहुए, न सीए,
न उण्हे, न णिद्धे, न लुक्खे।
न काऊ, न रुहे, न संगे, न इत्थी, न पुरिसे, न अन्नहा।
'परिन्ने सन्ने उवमा न विज्जइ।'
अरूवी सत्ता अपयस्स पयं नत्थि।
न सद्दे, न रूवे, न गंधे, न रसे,
न फासे इच्चेयावंति त्ति बेमि।

(६)

शास्त्र की आज्ञा मे निरत, जन्म और मरण के घेरे से पार हो जाता है। वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। वहाँ शब्दों की गति नही है। वहाॅ तर्क नही पहुॅचता। बुद्धि उसे ग्रहण नहीं कर सकती। ज्योतिस्वरूप, कर्ममल से रहित तथा ज्ञानी जीव वहाँ रहता है। वह न लम्बा है, न छोटा है, न गोल है, न त्रिकोण है, न चतुष्कोण है, न मण्डलाकार है। न काला है, न नीला है, न लाल है, न पीला है, न सफेद है।

न सुगन्ध वाला है, न दुर्गन्ध वाला है। न तीखा है, न कडुवा है, न कसैला है, न खट्टा है, न मीठा है। न कठोर है, न कोमल है, न भारी है, न हल्का है। न शीत है, न उष्ण है। न स्निग्ध है, न रूक्ष है। न शरीर धारण करता है, न उत्पन्न होता है, न किसी से सम्बन्ध प्राप्त करता है।

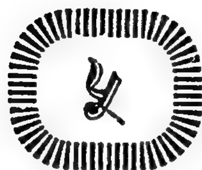
न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुॅसक है। सदा ज्ञान तथा दर्शन-वान् है। उसकी कोई उपमा नही है।

मुक्त जीव अरूप होते हैं। उनके लिए कोई शब्द नही है। वे शब्द से परे हैं।

न वे शब्द है, न रूप है, न गन्ध हैं, न रस है और न स्पर्श हैं। ये पाॅचो वहाॅ नहीं होते।

———





राज-मार्ग



वराणाएसी नारभे कंचणं सव्वलोए
एगप्पमुहे विदिस-पइराणे
निव्विराणचारी अरए पयासु।



(१)

से अविहिंसमाणे अणवयमाणे पुट्ठो फासे विपणुन्नए
एस समिया-परियाए वियाहिए।

(२)

जे असत्ता पावेहिं कम्मेहिं उयाहु।
"ते आयंका फुसंति" इति उयाहु धीरे।
'ते फासे पुट्ठो अहियासए।'
से पुव्वं पेयं पच्छापेयं भेउरधम्मं विद्धंसण-धम्मं
अधुवं अणिइयं असासयं चयावचइयं—
विपरिणामधम्मं पासह।
एयं रूव-संधिं।

(३)

समुप्पेहमाणस्स एगाययण-परस्स-इह विप्पमुक्कस्स
नत्थि मग्गो विरयस्स त्ति बेमि।

(४)

लोग-वित्तं च णं उवेहाए,
एए संगो अविजाणओ।

(१)

संयमी साधु न हिंसा करे, न झूठ बोले। दुःख आने पर उन्हें शान्ति-पूर्वक सहे।

(२)

जो लोग पाप-कर्मों में आसक्त नहीं हैं, उन्हे यदि कभी रोग घेर लेवे तो शान्ति-पूर्वक सहने चाहिएँ। यही तीर्थंकर भगवान् ने कहा है। उन्हे यह सोचना चाहिए कि रोग हमे ही भुगतने पड़ेगे। इस शरीर को पहले या पीछे नष्ट होने वाला, अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, बढ़ने-घटने वाला तथा बदलने वाला समझो। यही अवसर है।

(३)

जो पुरुष इस बात को जानता है, जो सदा ज्ञानादि गुणों में रमण करता है, जो जीव मुक्त है, जो सांसारिक-विषयों से विरत है, वह नहीं भटकता।

(४)

सांसारिक वस्तुओं को भयदायी समझकर छोड़ देना चाहिए। जो परिग्रह आदि मे आसक्ति नही करता उसे भय नहीं है।

(५)

से सुप्पडिबद्धं 'सुवणीयं' ति नच्चा पुरिस !
परमचक्खू विप्परक्कम ।
एएसु चेव बंभचेरं ति बेमि ।

(६)

एत्थ विरए अणगारे दीह-रायं तिइक्खए ।

(७)

एयं नियाय मुणिणा पवेइयं ।
इह आणाकंखी पंडिए अणिहे पुव्वावर-रायं
जयमाणे सया सीलं सुपेहाए सुणिया
भवे अकामे अझंझे ।

(८)

वणाएसी नारभे कंचणं सव्व-लोए एगप्पमुहे
विदिस-पइण्णे निव्विण्ण-चारी अरए पयासु ।

(९)

एगया गुण-समियस्स रीयओ काय-संफासं समणुचिण्णा
एगइया पाणा उद्दायंति, इह-लोग-वेयण-वेज्जावडियं ।
जं आउट्टि-कयं कम्मं, तं परिन्नाय विवेग-मेइ,
एवं से अप्पमाएणं विवेगं किट्टइ वेयवी ।

(५)

हे पुरुषो !

परिग्रह का त्यागी ही सम्यक् प्रतिबोध प्राप्त करता है, वही ज्ञान आदि गुण प्राप्त कर सकता है। इसलिए उत्तम दृष्टि रखकर संयम में पराक्रम करो। ऐसा करनेवालो मे ही ब्रह्मचर्य रहता है।

(६)

परिग्रह से रहित मुनि आये हुए कष्टो को जीवनपर्यंत सहे।

(७)

तीर्थकर भगवान् ने ज्ञान द्वारा जानकर यह सब कहा है। भगवान् की आज्ञा पर चलने की रुचि रखने वाले मुनि को निस्पृह होकर तथा ब्रह्मचर्य को मोक्ष का साधन मान कर काम तथा इच्छा का दमन करना चाहिए। रात्रि के प्रथम तथा अन्तिम प्रहर में इन बातो पर विचार करना चाहिए।

(८)

यश चाहने वाला मुनि संसार मे किसी का आरम्भ न करे और एकमात्र संयम को सामने रखकर, मोक्ष से विमुख मार्गों से ऊँचा उठकर ससार से उदासीन रहकर विचरने वाला बने तथा स्त्रियो से विमुख रहे।

(९)

गुणयुक्त होकर धर्मानुष्ठान करते हुए भी उसके शरीर-स्पर्श से कोई-कोई प्राणी मारे जाते हैं। उस समय जो कर्म बँधते हैं वे इसी जन्म में भुगत लिए जाते हैं। किन्तु जो कर्म प्रमाद आदि के द्वारा बँधता है उसके लिए अच्छी तरह जानकर प्रायश्चित्त लेना चाहिए। इस प्रकार प्रमाद-रहित होकर विचरते हुए उसके कर्म छूट जाते हैं।

यह सर्वज्ञ भगवान् ने कहा है।

(१०)

उव्वाहिज्जमाणे गाम-धम्मेहिं अवि निब्बलासए,
अवि * ओमोयरियं कुज्जा, अवि उड्ढं ठाणं ठाएज्जा,
अवि गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अवि आहारं वोच्छिंदेज्जा,
अवि चए इत्थीसु मणं।
पुव्वं दंडा पच्छा फासा, पुव्वं फासा पच्छा दंडा—
इच्चेए कलहा संग-करा भवंति। पडिलेहाए आगमित्ता
आणवेज्जा अणासेवणाए त्ति बेमि।
से नो काहिए, नो पासणिए, नो संपसारणिए,
नो मामए, नो कयकिरिए, वइ-गुत्ते अज्झप्प-
संवुडे परिवज्जए सया पावं।
एयं मोणं समणुवासिज्जासि त्ति बेमि।

(११)

चिच्चा सव्वं विसोत्तियं फासे समिय-दंसणे।
एए भो! नगिणा वुत्ता, जे लोगंसि अणागमण-
धम्मिणो।

---

* अवमोदर्य—कर्म-निर्जरा के लिए की जाने वाली तपस्या का एक भेद। भूख की अपेक्षा न्यून भोजन करना।

(१०)

काम-भोगों से पीड़ित होने पर मुनि हल्का आहार करे। ऊनोदरी करे। एक स्थान पर खड़ा रहकर कायोत्सर्ग करे। दूसरे गाँव में विहार कर जाय। सर्वथा आहार करना छोड़ देवे किन्तु अपना मन स्त्रियो में न फँसावे। स्त्रियो में फँसने पर पहले संकट उठाने पड़ते हैं और पीछे स्पर्श-सुख प्राप्त होता है, पीछे संकट सहने पड़ते हैं। स्त्रियो का संग कलह उत्पन्न करता है। यह सब जानकर, विचार कर उनसे दूर रहना चाहिए।

स्त्री-संग का परित्यागी मुनि उनकी शृङ्गार-कथा न करे। उनके अङ्गोपाङ्ग न देखे। उनके साथ बातचीत न करे। उन पर ममता न करे। उनकी आवभगत न करे। उनके सामने मौन रहे। सदा आत्मलीन रहकर पापाचार से दूर रहे। इसी प्रकार मुनिव्रत का पालन करे। यही मैं कहता हूँ।

(११)

समदर्शी मुनि मन में किसी प्रकार की उदासी अथवा चिन्ता लाए बिना सभी कष्टों को सहे।

हे मुनियो ! इस प्रकार जो संयम में दृढ़ रहते हैं और दुबारा गृहस्थाश्रम में नहीं फँसते वे ही वास्तव में नग्न हैं।

(१२)

कायस्स वियाघाए एस संगाम-सीसे वियाहिए।
से हु पारंगमे मुणी।

अविहम्ममाणे फलगावयट्ठी—
कालोवनीए कंखिज्ज कालं जाव सरीर-भेओ
त्ति बेमि।

(१३)

जे छेए से सागारियं न सेवए।
कट्टु एव-मवियाणओ बिइया मंदस्स बालआ।
लद्धा हु-रत्था पडिलेहाए आगमित्ता
आणविज्जा अणासेवणियाए त्ति बेमि।

(१४)

मज्झिमेणं वयसा वि एगे संबुज्झमाणा समुट्ठिया,
सोच्चा मेहावी वयणं पंडियाणं निसामिया,
समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए।
ते अणवकंखमाणा, अणइवायेमाणा, अपरिग्गहमाणा,
नो परिग्गहावंति, सव्वावंति च णं लोगंसि निहाय दंडं
पाणेहिं पावं कम्मं अकुव्वमाणे एस महं
अगंथे वियाहिए।
ओए जुइमस्स खेयन्ने उववायं चवणं च नच्चा।

---

(१२)

शरीर का नाश करना ही संग्राम का प्रधान विन्दु कहा गया है। जो मुनि इससे नहीं घबराता वह अवश्य संसार को पार कर जाता है। इसलिए मुनि अन्तकाल में परिषहों से न डरता हुआ, लकड़ी के तख्ते के समान अचल रहकर जब तक आयुष्य पूरी होने के कारण शरीर न छूट जाय तब तक मरण-काल की प्रतीक्षा करे। यही मैं कहता हूँ।

(१३)

विद्वान् पुरुष मैथुन का सेवन नहीं करता। सेवन करके भी गुरु से उसको छिपाना दूसरा अज्ञान है। यदि अनायास कोई इन्द्रिय-विषय प्राप्त हो जाय तो आत्मनिरीक्षण द्वारा उसे मन से निकाल दे। दूसरों को विषय-सेवन करने के लिए आज्ञा न दे।

यही मैं कहता हूँ।

(१४)

बहुत-से जीव मध्यम वय में प्रतिबोध प्राप्त करके दीक्षा अङ्गीकार करते हैं। चतुर पुरुषों को पण्डितों के वचन सुनकर तथा हृदय में धारण कर समता रखनी चाहिए।

अरिहन्तों ने समता में धर्म बताया है। दीक्षित मुनि काम-भोग की अभिलाषा छोड़कर किसी जीव की हिंसा न करते हुए, किसी भी प्रकार का परिग्रह न रखते हुए समस्त संसार में निष्परिग्रही होकर विचरते हैं। प्राणि-हिंसा को छोड़कर, सभी पापों से निवृत्त रहने वाले महामुनि कहे गये हैं।

ऐसे मुनि राग-द्वेष छोड़कर आत्मा की ज्योति में लीन रहते हैं। आत्मज्ञ मुनि जानते हैं कि देवताओं के साथ भी जन्म-मरण लगा हुआ है।







कायर

असंभवंता विडज्झमाणा,
कामेहिं गिद्धा अज्झोववन्ना ।।
समाहि-माघाय-मझोसयंता
सत्थारमेव फरुसं वयंति ।।

(१)

आउरं लोगमायाए,

चइत्ता पुव्व-संजोगं,

हिच्चा उवसमं वसित्ता बंभचेरंसि

*वसु वा =अणुवसु वा जाणित्तु धम्मं जहा तहा

अहेगे तमच्चाइ कुसीला ।

(२)

वत्थं पडिग्गहं कंबलं पाय-पुंछणं विउसेज्जा

अणुपुव्वेण अणहियासेमाणे परीसहे दुरहियासए

कामे समायमाणस्स इयाणिं मुहुत्तेण वा अपरिमाणएमे

एवं से अंतराएहिं कामेहिं आकेवलिएहिं अवइन्ना चेए

(३)

एवं ते सिस्सा दिया-य राओ य अणुपुव्वेण वाइया

तेहिं महावीरेहिं पन्नाण-मंतेहिं, तेसि-मंतिए पन्नाण

मुवलब्भ हिच्चा उवसमं फारुसियं स-मा-इयंति

'वसित्ता बंभचेरंसि 'आणं' तं नो' त्ति मन्नमाणा

आघायं तु सोच्चा, निसम्म समणुन्ना जीविस्सामो

एगे निक्खम्मते—

असंभवंता विडज्भमाणा, कामेहिं गिद्धा अज्भोववन्ना

समाहि-माघाय-मभोसयंता, सत्थारमेव फरुसं वयंति ।

---

* वसु—साधु   = अनुवसु—श्रावक

(१)

संसार को दुःख से व्याकुल जानकर, माता-पिता, पत्नी-पुत्र आदि के मोह को छोड़कर, कषायों का उपशमन करके, ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, धर्म को अच्छी तरह जान करके भी कुछ कुशील साधु अथवा श्रावक धर्म को छोड़ देते हैं।

(२)

दुःसह परीषहों को न सहने के कारण वे वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोञ्छन आदि धर्मोपधि को छोडकर गृहस्थ बन जाते हैं। इस प्रकार कामभोगों में आसक्त रहने वाले अल्प समय में ही शरीर को छोड़कर चले जाते हैं। फिर उन्हें अनन्त काल तक वह सामग्री प्राप्त नहीं होती। इस प्रकार वे अति दुःखमय काम-भोगों मे सदा अतृप्त रहकर भटकते रहते हैं।

(३)

इस प्रकार उत्तम ज्ञान वाले तथा संयम मे पराक्रम दिखाने वाले उन मुनियो के द्वारा दिन रात क्रमपूर्वक शिक्षा पाकर भी वे शिष्य ज्ञान प्राप्त करके विनय छोड़ देते है और उद्धत बन जाते हैं। कुछ दिन ब्रह्मचर्य का पालन करने के बाद वे भगवान् की आज्ञा का अनादर करने लगते हैं।

कुछ लोग सर्व-माननीय होने की इच्छा से दीक्षा लेते हैं। इस कारण वे मोक्ष-मार्ग मे नहीं चलते। वासनाओ से जलते हुए काम-भोगों मे आसक्त रहते है। काम-भोगो मे ध्यान रखते हैं। भगवान् द्वारा प्रतिपादित समाधि का पालन नहीं करते। शिक्षा देने पर सीख देने वाले को ही कठोर बाते सुनाने लगते हैं।

(४)

सीलमंता उवसंता संखाए रीयमाणा
'असीला' अणुवयमाणस्स बिइया मंदस्स बालया।

(५)

नियट्टमाणा वेगे
आयार-गोयर-माइक्खंति
नाण-भट्ठा-दंसण-लूसिणो।

(६)

नममाणा वेगे जीवियं विप्परिणामंति।
पुट्ठावेगे नियट्टंति जीवियस्सेव कारणा।
निक्खन्तं पि तेसिं दुन्निक्खन्तं भवइ।
बाला वयणिज्जा हु ते नरा पुणो पुणो जाइं पकप्पंति।
अहे संभवंता विद्दायमाणा "अहमंसि" त्ति वि-उक्कसे,
उदासीणे 'फरुसं वयंति' पलियं पकथे अदुवा पकथे-
अतहेहिं, तं वा मेहावी जाणेज्जा धम्मं।

(४)

कुछ लोग, जो स्वयं शुद्ध संयम नहीं पालते, वे शीलवान्, उपशान्त तथा ज्ञान-पूर्वक संयम पालने वालों को दुःशील 'अशील' बताते हैं, यह उनकी दूसरी मूर्खता है।

(५)

कितने ही मनुष्य संयम का पालन न करने पर भी अपनी चर्या को शुद्ध आचार बताते है। वे लोग ज्ञान-भ्रष्ट हैं एवं अपनी तथा दूसरों की श्रद्धा को विचलित करते हैं।

(६)

कुछ साधु आचार्य आदि के प्रति विनय-व्यवहार रखते हुए संयमी जीवन से हट जाते है। कुछ साधु परीषह उपस्थित हो जाने पर सुखी जीवन बिताने की इच्छा से संयम छोड़ देते हैं। उनका 'घरबार' छोड़ना धिक्कार के योग्य है। वे मूर्ख हैं, निन्दनीय हैं, बार-बार जन्म-मरण प्राप्त करते हैं।

वे संयम भ्रष्ट होने पर भी अपने को विद्वान् मानते हैं। 'हम विद्वान् हैं।' इस प्रकार झूठी आत्मप्रशंसा करते हैं। मध्यस्थ रहने वाले दूसरे मुनियों को कठोर बातें कहते हैं। वे जनता द्वारा तिरस्कृत होकर संसार मे भटकते रहते है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को धर्म का स्वरूप सम्यक् प्रकार से जानना चाहिए।

(७)

किमणेण भो ! जणेण करिस्सामि ?—त्ति

मन्नमाणा एवं एगे विइत्ता—मायरं पियरं हिच्चा
णायओ य परिग्गहं वीरायमाणा समुट्ठाए अवि-
हिंसा सुव्वया दंता पस्स दीणे उप्पइए पडिवयमाणे।
वसट्टा कायरा जणा लूसगा भवंति।

अह-मेगेसिं सिलोए पावए भवइ।

से समणो भवित्ता विब्भंते विब्भंते पासहेगे
समन्नागएहिं सह असमन्नागए, नममाणेहिं
अनममाणे, विरएहिं अविरए, दविएहिं अदविए
अभिसमेच्चा—पंडिए मेहावी।
निट्ठियट्ठे वीरे आगमेणं
सया परक्कमेज्जासि
त्ति बेमि।

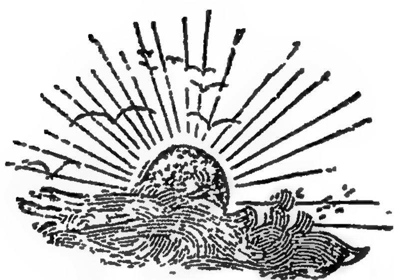
---

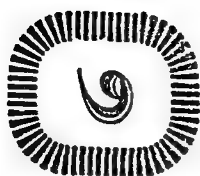
(७)

ये लोग मेरे क्या काम आएँगे ? ऐसा सोचकर कुछ लोग दीक्षा लेते समय माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि को अनर्थ का मूल समझते हुए छोड़ देते है। वे दीक्षा लेकर अहिंसक, पवित्र नियमों के पालक, जितेन्द्रिय और संयमारूढ़ होकर भी भ्रष्ट हो जाते हैं और अपनी दीनता दिखाते है। क्योंकि जो विषय और कषायों के अधीन होकर अपध्यान करने लगते हैं वे सत्वहीन होते हैं और संयम से अवश्य भ्रष्ट हो जाते हैं। फिर संसार मे उनकी अपकीर्ति होती है कि यह साधु होकर डर गया और भ्रष्ट हो गया।

कुछ अभागे उग्रविहारियो के साथ रहते हुए भी आलसी बन जाते हैं। विनयी साधुओं के साथ भी अविनीत बनकर रहते हैं। विरतों के साथ भी अविरति में रहते हैं।

यह जानकर मर्यादाशील पण्डित-पुरुष को विषय-वाञ्छा छोड़ देनी चाहिए। सदा साहस के साथ तीर्थकरो के उपदेशानुसार विचरना चाहिए। यही मेरा कथन है।





म हा - मु नि



आगय-पन्नाणाणं किसा बाहाओ भवंति ।
पयणुए य मंससोणिए ।
विस्सेणिं कट्टु परिन्नाय
एस तिराणे मुत्ते विरए वियाहिए ।

(१)

अहेगे धम्म-मायाय, आयाण-प्पभिइ-सुप्पणिहिए
चरे अप्पलीयमाणे दढे।
सव्वं गिद्धिं परिन्नाय एस पणए महामुणी।
अइअच्च सव्वओ संगं "ण महं अत्थि त्ति।
इति एगो अह-मंसि" जयमाणे एत्थ विरए
अणगारे सव्वओ मुंडे रीयए।
जे अचेले परिवुसिए संचिक्खइ ओमोयरियाए,
से आकुट्ठे वा हए वा लुञ्चिए वा।
पलियं पकत्थ अदुवा पकत्थ अतहेहिं सद्द-फासेहिं,
इति संखाए एगयरे अन्नयरे अभिन्नाय
तितिक्खमाणे परिव्वए।
जे य हिरी जे य अहिरी-माणा।

(२)

इहमेगेसिमेग-चरिया होइ।
तत्थियरा इयरेहिं कुलेहिं सुद्धेसणाए सव्वेसणाए
से मेहावी परिव्वए।
सुब्भिमदुवा दुब्भिमदुवा भेरवा।
'पाणा पाणे किलेसंति।'
ते फासे 'पुट्ठो वीरे अहिया-सिज्जासि—त्ति बेमि।

(१)

कुछ भव्य-प्राणी धर्म प्राप्त करके दीक्षा अङ्गीकार करते हैं। वे प्रारम्भ से ही सावधान रहते हैं, जंजाल मे नही फँसते और ली हुई प्रतिज्ञा मे दृढ़ रहते है।

जो पुरुष सभी आसक्तियो को दुःख देने वाली जानकर उनसे दूर रहता है वही संयमी एवं महामुनि है।

इसलिए मुनि को सब संग छोड़कर "मेरा कोई नहीं है, मैं अकेला हूँ" इस प्रकार की भावना रखते हुए, पाप कर्म से निवृत्त होकर अपने आचार मे प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार से मुण्डित होकर, अचेल रहते हुए तथा परिमित आहार-पानी का सेवन करते हुए संयम में उत्साह दिखाना चाहिए।

पूर्वकृत निन्दित कर्मों का उल्लेख करके अथवा असत्य अपमानजनक बातो से किसी के द्वारा आकृष्ट होने पर, मारे जाने पर, बाल नोचने पर मुनि अपने ही कर्मो का फल मानकर प्रतिकूल तथा अनुकूल परीषहो को सहे।

(२)

कुछ महर्षि अकेले विचरते हैं। उन्हे भी साधारण कुलों से निर्दोष आहार लेते हुए विचरना चाहिए। वह सुगन्धि वाला हो अथवा दुर्गन्धि वाला, उस पर किसी प्रकार की प्रीति या अप्रीति न रक्खे। जिस समय सिंहादि भयङ्कर वन्य पशु कष्ट देवें उस समय भी धैर्य धर कर परीषहो को सहे।

(३)

एवं खु मुणी आयाणं ।
सया सु-अक्खायधम्मे विधूय-कप्पे
निज्झोसइत्ता ।

(४)

जे अचेले परिवुसिए, तस्स णं भिक्खुस्स नो
एवं भवइ—
'परिजुण्णे मे वत्थे, वत्थं जाइस्सामि, सुत्तं जाइस्सामि,
सुइं जाइस्सामि, संधिस्सामि, सिव्विस्सामि, उक्कसिस्सामि,
वुक्कसिस्सामि, परिहिस्सामि, पाउणिस्सामि ।

(५)

अदुवा तत्थ परक्कमंतं भुज्जो अचेलं तणफासा
फुसंति,
सीयफासा फुसंति, दंसमसगा फुसंति,
एगयरे अन्नयरे विरूवरूवे फासे अहियासेइ,
अचेले लाघव-मागममाणे तवे से—
अभि-समन्ना-गए भवइ ।

(३)

सदा पवित्रता के साथ धर्माराधन करने वाला तथा आचार को पालने वाला मुनि धर्मोपकरण के अतिरिक्त सभी वस्तुओं का त्याग कर देता है।

(४)

जो मुनि अल्प वस्त्र रखता है अथवा सर्वथा वस्त्र रहित है उसे ऐसी चिन्ताएँ नही होतीं कि मेरा वस्त्र फट गया है, नया वस्त्र माँगना है, धागा लाना है, सूई लानी है, वस्त्र जोड़ना है, सीना है, बढ़ाना है, छोटा करना है, पहिनना है अथवा ओढ़ना है इत्यादि।

(५)

वस्त्र रहित होकर संयम का पालन करने वाले मुनि के शरीर में तृण और कांटे चुभते हैं। सर्दी लगती है। डाँस और मच्छर काटते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रतिकूल स्पर्शों को सहना पड़ता है। उस समय भी मुनि वस्त्र-रहित अवस्था को निश्चिन्तता तथा सुख का कारण मानकर सभी परीषहों को सहता है। इस प्रकार वह तपश्चरण करता है।

(६)

जहेयं भगवया पवेइयं,
तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए सम्मत्त-
मेव समभि-जाणिया ।
एवं तेसिं महावीराणं चिर-रायं पुव्वाइं वासाइं
रीयमाणाणं दवियाणं पास अहियासियं ।

(७)

आगय-पन्नाणाणं किसा वाहाओ भवंति ।
पयणुए य मंस-सोणिए ।
विस्सेणिं कट्टु परिन्नाय
एस तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए त्ति बेमि ।

(८)

सिया वेगे अणुगच्छंति । असिया वेगे अणुगच्छंति ।
अणुगच्छमाणेहिं अणुगच्छमाणे कहं न निव्विज्जे ?
विरयं भिक्खुं रीयंतं चिर-राओसियं अरई तत्थ किं
विधारए ?

(६)

इसलिए भगवान् ने जिस तरह कहा है उसी प्रकार पवित्र भाव से रहना चाहिए। प्राचीन समय में अनेक महर्षियों ने भयङ्कर परीषह सहते हुए लम्बे समय तक संयम का पालन किया था। उनका आदर्श सामने रखना चाहिए।

(७)

ज्ञानी मुनियों की भुजाएँ कृश होती हैं। उनके शरीर में मांस तथा रुधिर बहुत थोड़ा होता है। ऐसे मुनि समभाव से रागद्वेष तथा कषायरूप संसार की श्रेणी को तोड़ डालते हैं। वे क्षमा आदि गुणों के धारक, संसार-समुद्र के पारगामी, भवबन्धन से छूटे हुए तथा पापवृत्ति से दूर होते हैं। शास्त्रों में उनका यह स्वरूप बताया गया है।

(८)

सांसारिक बन्धनों से बँधे हुए भी बहुत से व्यक्ति भगवान् के बताये मार्ग पर चलते हैं। बहुत से साधु भी भगवान के बताये मार्ग पर चलते हैं। मार्ग पर चलने वाले उन साधुओं के साथ चलता हुआ वह क्यों न निर्वेद प्राप्त करे ?

(९)

विरयं भिक्खुं रीयंतं चिर-राओसियं अरई तत्थ किं विधारए ?

(१०)

संधेमाणे समुट्ठिए ।
जहा से दीवे असंदीणे ।
एवं से धम्मे आरिय-पदेसिए ।

(११)

ते अणवकंखमाणा अणइवाएमाणा दइया मेहाविणो पंडिया ।
एवं तेसिं भगवओ अणुट्ठाणे ।
जहा से दिया पोए एवं ते—
सिस्सा दिया य राओ य अणुपुव्वेण वाइय त्ति बेमि ।

(१२)

से गिहेसु वा, गिहंतरेसु वा, गामेसु वा, गामंतरेसु वा, नगरेसु वा, नगरंतरेसु वा, जणवयेसु वा, जणवअंतरेसु वा, संते 'गइया' जणा लूसगा भवंति 'अदुवा फासा फुसंति ते फासे' पुट्ठो वीरो अहियासए ।

(९)

दीर्घकाल से सयम पालने वाले मुनि को क्या अरति संयम से स्खलित कर सकती है ?

(१०)

उत्तरोत्तर प्रशस्त परिणामो को प्राप्त करने वाला वह संयमी असन्दीन † द्वीप के समान है। उसी प्रकार तीर्थकरों द्वारा प्रतिपादित धर्म भी द्वीप-तुल्य है।

(११)

सांसारिक भोगों को नहीं चाहने वाले, जीवहिंसा से रहित. सभी के प्रिय, बुद्धिमान् तथा विद्वान् मुनि इस प्रकार भगवान् की आज्ञा का पालन करते हैं।

अज्ञान के कारण जो शिष्य भगवान् की आज्ञा का सम्यक् पालन नही करते, उनको वे मुनि अपने बच्चो को शिक्षा देने वाले पक्षियो के समान शिक्षा देते हैं।

इस प्रकार दिन-रात क्रमशः शिक्षा पाकर वे शिष्य भी मोक्ष-मार्ग के आराधक बन जाते हैं।

(१२)

घरों में, ग्रामो मे, नगरों में, देशो मे अथवा उनके आस-पास कुछ लोग ऐसे होते है जो मुनियो को कष्ट देते हैं। अथवा दूसरे भी बहुत से संकट उन पर आ जाते है। इस प्रकार कष्टों से घिरा हुआ वीर पुरुष धैर्यपूर्वक उन कष्टों को सहन करे।

---

† ऐसा द्वीप जो कभी पानी से नहीं ढँका जाता।

(१३)

ओए समिय-दंसणे दयं लोगस्स जाणित्ता—
पाईणं, पडीणं, दाहिणं, उदीणं आइक्खे
विभए किट्टे वेयवी ।
से उट्ठिएसु वा, अणुट्ठिएसु वा, सुस्सूसमाणेसु
पवेयए ।
संतिं, विरइं, उवसमं, निव्वाणं, सोयं, अज्जवियं,
मद्दवियं, लाघवियं, अणइवत्तियं,
सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाणं,
सव्वेसिं सत्ताणं, अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खेज्जा ।

(१४)

अणुवीइ भिक्खू धम्म-माइक्खमाणे नो अत्ताणं आसाएज्जा,
नो परं आसाएज्जा, नो अन्नाइं पाणाइं, भूयाइं, जीवाइं,
सत्ताइं आसाएज्जा ।
से अणासायए अणासायमाणे वज्भमाणाणं पाणाणं,
भूयाणं, जीवाणं, सत्ताणं जहा से दीवे असंदीणे एवं से
भवइ सरणं महामुणी ।
एवं से उट्ठिए ठियप्पा-अणिहे अचले चले अबहिल्लेसे,
परिव्वए संखाय पेसलं धम्मं दिट्ठिमं परिनिव्वुडे ।

(१३)

सर्वत्र समभाव रखने वाला, तेजस्वी एवं ज्ञानी मुनि पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर सभी जगह दया पालता हुआ लोगों को धर्मोपदेश करे। धर्म के विभाग बतावे तथा उसका फल बतावे।

साधु, असाधु तथा श्रावक सभी को धर्म की बातें सुनावे। उन्हे शान्ति, विरति, उपशम, निर्वाण, शौच, आर्जव, मार्दव तथा निष्परिग्रहता आदि का यथार्थ स्वरूप बतावे। सभी प्राण, भूत, जीव और सत्वो के प्रति उनका क्या धर्म है, इसका प्रतिपादन करे।

(१४)

विचार-पूर्वक धर्म का प्रतिपादन करता हुआ मुनि न अपना निरादर करे और न दूसरे का। अधिक क्या, किसी भी प्राण, भूत, जीव या सत्व का निरादर न करे। वह न किसी का निरादर करता है और न किसी का नाश करता है। संसार मे मारे जाते हुए प्राण, भूत, जीव और सत्वों के लिए वह महामुनि उसी प्रकार शरण होता है जिस प्रकार समुद्र मे डूबते हुए प्राणियों के लिए असन्दीन द्वीप है।

' इस प्रकार संयमी आत्मा को स्थिर रखकर निस्पृह, दृढ़, विहार करने वाला बनकर अशुभ अध्यवसायो को छोड़कर विचरे।

' समझदार व्यक्ति सद्धर्म को जानकर मोक्ष प्राप्त करते है।

(१५)

जे सन्निहाण-सत्थस्स खेयन्ने से भिक्खू
कालन्ने, बलन्ने, मायन्ने, खणन्ने, विणयन्ने, समयन्ने,
परिग्गहं अममायमाणे कालाणुट्ठाई अपडिन्ने
दुहओ छित्ता नियाइ।

(१६)

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारमाणे नो वामाओ हुणयाओ दाहिणं हणुयं संचारेज्जा आसाएमाणे, दाहिणाओ वामं हणुयं नो संचारेज्जा आसाएमाणे।
से अणासायमाणे लाघवियं आगममाणे।
तवे से अभिसमन्नागए भवइ।
जहेयं भगवया पवेइयं तमेव अभि-समेच्चा सव्वतो सव्वत्ताए सम्मत्तमेव समभिजाणिया।

(१५)

जो मुनि संयम में कुशल होते हैं वे ही काल, बल, मात्रा, क्षण, विनय तथा समय को जानते है। वे परिग्रह का ममत्व छोड़कर ठीक समय पर धर्म-क्रियाएँ करते हैं। वे निदान नहीं करते। राग और द्वेष दोनो को काटते हुए वे संयम-मार्ग मे चलते रहते हैं।

(१६)

साधु अथवा साध्वी अशन, पान, खादिम और स्वादिम का सेवन करते हुए स्वाद लेने की इच्छा से मुँह मे वस्तु को बाँई ओर से दाहिनी ओर न चलावे। इसी प्रकार दाहिनी ओर से बाँई ओर न चलावे। इस प्रकार स्वाद पर विजय पाने वाले मुनि ही कर्मभार से रहित होते हैं। वे ही तपस्वी माने गये हैं। इसलिए भगवान् के कथनानुसार पवित्र भाव से रहना चाहिए।

(१७)

जे खलु भो वीरा ते समिया सहिया सया-जया संघड-दंसिणो आओवरया अहातहं लोयं उवेहमाणा पाईणं, पडिणं, दाहिणं, उईणं, इय सच्चंसि परिचिए चिट्ठिंसु।
साहिस्सामो नाणं वीराणं समियाणं, सहियाणं सया जयाणं संघड-दंसिणं आओवरयाणं अहा-तहं लोयं समुपेहमाणाणं किमत्थि उवाही ?
पासगस्स न विज्जइ। नत्थि त्ति वेमि।

(१८)

से वेमि तंजहा-अविहरए पडिपुण्णे समंसि भोमे चिट्ठइ,
उवसंतरए सारक्खमाणे से-चिट्ठइ सोय—मज्झगए।
से पास सव्वओ गुत्ते पास लोए महेसिणो।
जे य पन्नाणमंता पबुद्धा आरंभोवरया सम्ममेयंति पासह।
कालस्स कंखाए परिव्वयंति त्ति वेमि।

———

(१७)

जो वीर हैं वे सदा समितियो का पालन करते है। ज्ञानादि गुणों से युक्त होते हैं। उपयोग रखते हैं। लोक के यथार्थ स्वरूप को जानते हैं। पूर्व, पश्चिम, दक्षिण अथवा उत्तर किसी भी दिशा में रहें, सत्य में स्थिर रहते हैं।

उन्हीं समितियो के पालक, ज्ञानादि से युक्त, सदा संयत, सदा उपयोग रखने वाले आत्म-निष्ठ और लोक स्वरूप के यथार्थ ज्ञाता वीरों का रहस्य मैं बताता हूँ। क्या उन्हे कोई झंझट रहता है ? नहीं। तत्त्वदर्शी के कोई उपाधि नहीं रहती। यही मैं कहता हूँ।

(१८)

समतल भूमि मे निर्मल जल से भरे हुए स्वच्छ सरोवर के समान राग-द्वेषादि रज से रहित, सभी जीवो की रक्षा करने वाले, ज्ञान-स्रोत के मध्य में स्थित सभी ओर से सुरक्षित बहुत से महर्षि संसार में विचरते हैं। उन्हे देखो।

बहुत से ज्ञानवान्, सदा संयम मे जागृत रहने वाले, प्राणिहिंसा से निवृत्त मुनि भी इसे ठीक समझकर समाधिमरण की इच्छा रखते हुए सरोवर के समान रहते हैं।





-: गुरुकुल :-

तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सन्नी तन्निवेसणे
जयं-विहारी चित्त-निवाई
पंथ-निज्झाई पलि-बाहिरे
पासिय पाणे गच्छेज्जा ।

(१)

गामाणु-गामं दूइज्जमाणस्स—
दुज्जायं दुप्परक्कंतं भवइ
* अवियत्तस्स भिक्खुणो ।

(२)

वयसा वि एगे वुइया कुप्पंति माणवा,
उन्नयमाणे य नरे महया मोहेण मुज्झइ-
संबाहा बहवे भुज्जो भुज्जो दुरइक्कमा-
अजाणओ अपासओ ।
एयं ते मा होउ, एयं कुसलस्स दंसणं ।
तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सन्नी
तन्निवेसणं ।
जयं-विहारी चित्त-निवाई
पंथ-निज्झाई पलिबाहिरे
पासिय पाणे गच्छिज्जा ।

---

* अव्यक्त :—वह साधु जो ज्ञान अथवा आयु की दृष्टि से अभी पक्का नहीं हुआ है जिसके लिए पतन का भय बना हुआ है ।

(१)

जो साधु शास्त्र एवं आयुष्य से परिपक्व नहीं है उसका अकेले गाँवों मे विचरना ठीक नहीं है। उसका अकेले विहार करना भी अच्छा नहीं है और अकेले संयम की आराधना करना भी ठीक नहीं है।

(२)

कुछ अपरिपक्व साधु वाणी द्वारा भी धर्म-प्रेरणा करने पर कुपित हो उठते हैं। जिस व्यक्ति का मिथ्याभिमान बढ़ा हुआ है वह महामोह के कारण विवेक खो देता है। ऐसे अज्ञान तथा आत्महित को न देखने वाले साधु के मार्ग में बहुत बाधाएँ आती हैं और वह उन पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। ऐसा तुम्हारे साथ नही होना चाहिए। यही तीर्थंकर भगवान् का अभिप्राय है।

अव्यक्त शिष्य सदा गुरु की दृष्टि पर चले अर्थात् गुरु जिस वस्तु को जैसा देखे वैसा ही वह भी समझे। उसी के कथनानुसार जो पदार्थ त्याज्य हैं उन्हें छोड़ दे, प्रत्येक बात में उसी को सामने रक्खे। उसी के ज्ञान को अपना ज्ञान माने अर्थात् अपनी भिन्न प्ररूपणा न करे। उसी के स्थान मे निवास करे। यतनापूर्वक विचरे। आचार्य के चित्त का ध्यान रखकर तदनुसार व्यवहार करे। यदि गुरु कहीं जाना चाहें तो उनके लिए मार्ग का ध्यान रक्खे। सदा गुरु के पास रहे। कहीं भेजे जाने पर प्राणियो को देखता हुआ चले।

(३)

से अभिक्कममाणे, पडिक्कममाणे, संकुचमाणे,
पसारेमाणे, विणियट्टमाणे, संपलिमज्जमाणे ।

(४)

अणाणाए एगे सोवट्ठाणा, आणाए एगे निरुवट्ठाणा ।
एयं ते मा होउ ।
एयं कुसलस्स दंसणं ।
तद्दिट्ठीए, तम्मुत्तीए, तप्पुरक्कारे, तस्सन्नी, तन्निवेसणे ।

(५)

अभिभूय अदक्खू अणभिभूए,
पहू निरालंबणयाए जे महं अवहीमणे ।
पवाएण पवायं जाणेज्जा ।
सह संमइयाए परवागरणेणं
अन्नेसिं वा अंतिए सोच्चा ।

(३)

गुरु की आज्ञानुसार चलने वाला वह साधु कहीं जाते हुए, लौटते हुए, हाथ-पैर आदि फैलाते हुए, संकुचित करते हुए तथा अशुद्ध व्यापारो से निवृत्त होते हुए परिमार्जन करे। इसी तरह वह गुरुकुल में वसे।

(४)

कुछ लोग भगवान् की आज्ञा से विपरीत कर्मों में प्रयत्नशील हैं। कुछ लोग भगवान् की आज्ञा मे रहने पर भी उद्यमहीन हैं। ऐसा तुम्हे न होना चाहिए। यही तीर्थंकरो का अभिप्राय है। तुम्हें तो आज्ञा पर ही दृष्टि रखनी चाहिए। आज्ञानुसार ही मुक्ति माननी चाहिए। उसी को सामने रखना चाहिए। प्रत्येक समय उसी का ध्यान रखना चाहिए तथा उसी में वसना चाहिए।

(५)

इस प्रकार आज्ञा मे विचरने वाला कर्मों को जीतकर तत्त्व को देख लेता है। वह महापुरुष, जिसका मन आज्ञा से वाहर नहीं जाता है, कहीं पर हार नहीं खाता। वह निरालम्बनतारूप भावना के लिए समर्थ हो जाता है।

गुरु-परम्परा से सर्वज्ञोपदेश को जानना चाहिए। किसी भी वाद को जानने के तीन साधन है :—

†जातिस्मरण, तीर्थंकर का उपदेश तथा दूसरे आचार्यों से सुनना।

---

† पूर्वजन्म या जन्मों की वातों का स्मरण।

(६)

निद्देसं नाइवत्तेज्जा मेहावी।
सु-पडिलेहिय सव्वओ सव्वप्पणा सम्मं समभिण्णाय।
इह आरामं परिण्णाय अल्लीणे गुत्ते परिव्वए,
निट्ठियट्ठी वीरे आगमेण सया परक्कमेज्जासि त्ति वेमि।

(७)

"आणाए मामगं धम्मं।"
एस उत्तरवाए इह माणवाणं वियाहिए।
एत्थोवरए तं झोसमाणे
आयाणिज्जं परिण्णाय परियाएणं विगिंचइ।

---

(६)

सभी प्रकार से तथा सभी रूपों से सर्वज्ञों की आज्ञा को अच्छी तरह जानकर बुद्धिमान् पुरुष फिर आज्ञा का उल्लंघन न करे।

इस संसार में संयम को ही वास्तविक सुख का स्थान मान कर इन्द्रिय-विषयों में अलिप्त रहता हुआ तथा संयम से सुरक्षित होकर विचरे।

हे मोक्षार्थी वीर! सदा आगमों की आज्ञानुसार चलो।

(७)

तीर्थंकर भगवान् ने कहा है—"मेरे धर्म का आज्ञानुसार पालन करना चाहिए।" इस प्रकार उन्होंने मनुष्यों के लिए अत्यन्त हितकर प्रवचन किया है। इसलिए मुनि संयम में लीन रहकर कर्मों को खपाता हुआ धर्मक्रिया करता रहे। कर्मों का स्वरूप जान लेने के बाद उनका नाश संयम से ही होता है।





प्रवचन



बहु-दुक्खा हु जंतवो
सत्ता कामेहिं माणवा
अबलेण वहं गच्छंति-
सरीरेण पभंगुरए ।

———

(१)

णेतेहिं पलिच्छिन्नेहिं आयाण-सोय-गढिए बाले अव्वोच्छिन्न-बंधणे अणभिक्कंत-संजोए तमंसि अवियाणओ आणाए लंभो नत्थि ।

त्ति बेमि ।

(२)

जस्स नत्थि पुरा पच्छा—
मज्झे तस्स कुओ सिया ?

(३)

संसयं परिजाणओ संसारे परिन्नाए भवइ ।
संसयमपरिजाणओ संसारे अपरिन्नाए भवइ ।

(१)

मूर्ख परिमितदर्शी नेत्रों के द्वारा कर्मबन्ध के कारणों में आसक्त हो जाता है। वह बन्धनो को नहीं छोड़ सकता। सांसारिक बन्धनों से बाहर नहीं निकल सकता। वस्तु-तत्त्व को न जानकर अन्धेरे मे भटकता रहता है। उसे भगवान् की आज्ञा से भी कोई लाभ नहीं होता।

(२)

जिसको पहले कभी * सम्यक्त्व-प्राप्ति नहीं हुई है और पीछे भी प्राप्त होने की आशा नहीं है, उसे भला मध्य में कैसे प्राप्त हो सकती है ?

(३)

जिस व्यक्ति के हृदय मे संशय होता है वह संसार को जान लेता है। जिसे संशय नहीं होता वह संसार को नहीं जानता।

पापी जीव सदा निश्चिन्त होकर पाप मे फँसे रहते हैं। उन्हीं में रहते हुए भव्य जीव के मन मे शंकाएँ उठने लगती हैं। दूसरो को दुःख देने का क्या फल होगा ? मैं मर कर कहाँ जाऊँगा ? इत्यादि। इस प्रकार की शङ्काओ से प्रेरित होकर वह संसार के स्वरूप को जानना चाहता है। फिर धर्म में प्रवृत्त होता है। विना शङ्का या संशय यह जिज्ञासा नहीं होती।

---

* सम्यक्त्व—अनादिकाल से ससार मे भटकता हुआ जीव आत्मविकास करता हुआ जब कर्मग्रन्थि को तोड डालता है और अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय इन सात कर्मप्रकृतियों का क्षय, उपशम या क्षयोपशम कर देता है उस समय प्रगट होने वाला आत्मा का तत्त्वरुचिरूप शुभ परिणाम।

(४)

समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए—
"जहेत्थ मए संधी झोसिए,
एवं अन्नत्थ संधी दुज्झोसिए भवइ।
तम्हा बेमि नो हणिज्ज वीरियं।"

(५)

उवेहमाणो अणुवेहमाणं बूया—"उवेहाहि समियाए।"
इच्चेवं तत्थ संधी झोसिओ भवइ।
से उट्ठियस्स ठियस्स गइं समणुपासह,
एत्थ वि बालभावे अप्पाणं नो उवदंसेज्जा।

(६)

भुजंगा इव सन्निवेसं नो चयंति
एवं पेगे अणेगरूवेहिं कुलेहिं
जायारूवेहिं सत्ता कलुणं थणंति,
नियाणओ ते न लभंति मोक्खं।

(७)

अह पास तेहिं कुलेहिं आयत्ताए जाया।

(४)

तीर्थङ्करो ने समता मे धर्म बताया है। उन्होंने कहा है—हे मनुष्य ! जिस प्रकार मैंने यहाँ कर्म खपाये हैं उस प्रकार दूसरे मार्गों से खपाना कठिन है। इसलिए कहता हूँ—अपनी शक्ति को छिपाना नहीं चाहिए।

(५)

सम्यक् विचार करने वाला पुरुष विपरीतगामी को भी सम्यक् विचार के लिए प्रेरित करे। उसे कहे—हे पुरुष ! तू सम्यक् विचार कर। इसी से कर्मक्षय होता है।

इस प्रकार वह संयम के लिए उद्यत पुरुष के आचार को देखकर आत्मा को शिथिलता में न पडने दे।

(६)

जिस प्रकार साँप अपने स्थान को नहीं छोड़ते इसी प्रकार भिन्न-भिन्न कुलों मे उत्पन्न हुए रूपादि विषयों में फँस कर प्राणी कष्ट भोगते हैं, रोते हैं किन्तु कर्मों से नहीं छूटते, इसलिए मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते।

(७)

अपने-अपने कर्मों का फल भोगने के लिए जीव भिन्न-भिन्न कुलो में जन्म लेकर अनेक अवस्थाएँ भोगते रहते हैं।

(८)

गंडी अदुवा कुट्ठी रायंसी अवमारियं।
काणियं झिम्मियं चेव कुणियं खुज्जयं तहा।
उयरिं च पास मूयं च सूणियं च गिलासिणं।
वेवयं पीढ-सप्पिं च सिलिवइं महु-मेहिणं।
सोलस एए रोगा अक्खाया अणु-पुव्वसो।
अह णं फुसंति आयंका फासा य असमंजसा।
मरणं तेसिं संपेहाए उववायं चवणं च णच्चा।
परियागं च संपेहाए तं सुणेह जहा तहा।

(९)

संति पाणा अंधा तमसि वियाहिया
तमेव सइ-मसइ-मइच्च
उच्चावय फासे पडिसंवेइए बुद्धेहिमेयं पवेइयं।
संति पाणा *वासगा =रसगा,
×उदये उदयचरा आगास-गामिणो।
पाणा पाणे किलेसंति। पास लोए महब्भयं।

---

* द्वीन्द्रिय जीव (वासृ शब्द कुत्सायाम्-वासन्तीति वासका भाषालब्धि-समुत्पन्ना द्वीन्द्रियाद्य । इति टीका ।

= संज्ञी जीव :—रसमनुगच्छंति इति रसगा :—कटुतिक्तकषायादिरस-वेदिन. संज्ञिन. इत्यर्थ. ।

× एकेन्द्रिय जीव :—'उदके' उदकरूपा एवैकेन्द्रिया जन्तव पर्याप्तका-अपर्याप्तकभेदेन व्यवस्थिता । इति टीका ।

(८)

किसी को गण्डमाला का रोग होता है, किसी को कुष्ट, किसी को क्षय, किसी को अपस्मार, काणापन, मोटापा, लूलापन, कुबड़ापन, उदररोग, गूँगापन, शोथ, भस्मकरोग, कम्पन, पीठ का दाह, हाथीपगा, मधुमेह होता है।

ये १६ सोलह रोग क्रमशः बताये गये हैं। इनके अतिरिक्त फोड़ा, फुन्सी, घाव आदि अनेक कष्ट होते हैं। अन्त में इनसे मृत्यु भी हो जाती है।

देवता आदि औपपातिक जन्म वालों के साथ भी †च्यवन लगा हुआ है। यह सब कर्मों का ही परिपाक है। ऐसा जानकर जो मैं कहता हूँ सुनो।

(९)

संसार मे ऐसे बहुत प्राणी हैं जो सदा अन्धेरे में पडे रहते हैं। वहीं पर बार-बार जन्म-मरण प्राप्त करते हुए वे भयङ्कर दुःखो को भोगते रहते हैं। यह बात तीर्थंकर भगवान् ने कही है।

इसी प्रकार एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, ‡संज्ञी, जलचर तथा नभचर जीव सभी एक दूसरे को दुःख देते रहते हैं।

संसार को महाभयदायी समझो।

---

† मरण ‡ मन वाले

(१०)

वहु-दुक्खा हु जंतवो,
सत्ता कामेहिं माणवा ।
अवलेण वहं गच्छंति
सरीरेण पभंगुरेण ।
अट्टे से वहु-दुक्खे इह वाले पकुव्वइ
एए रोगा वहू णच्चा आउरा परितावए ।
नालं पास ।
अलं तवे 'एहिं' ।
एयं पास मुणी !
महब्भयं ।
नाइवाएज्जा कंचणं ।

(११)

अहम्मट्ठी "तुमंसि नाम वाले"
आरम्भट्ठी अणुवयमाणे ।
हणमाणे घायमाणे हणओ यावि
समणुजाणमाणे "घोरे धम्मे उदीरिए ।"
उवेहइ णं अणाणाए, एस विसण्णे वियद्दे वियाहिए
त्ति वेमि ।

(१०)

जीव वहुत दुःखो से युक्त है। फिर भी मनुष्य कामभोगों में आसक्त वने रहते हैं। निःसार, क्षणभङ्गुर शरीर के लिए पाप करके वे भयङ्कर दुःख प्राप्त करते रहते हैं।

दुःख में फँसे हुए अविवेकी जीव शरीर मे अनेक रोगों को देखकर उनके निवारणार्थ हिंसा करते हैं। किन्तु उससे रोग दूर नहीं होते।

इसलिए हे महामुने! तुम इन सबको छोड़ दो। अत्यन्त भय समझकर तुम्हें किसी की भी हिंसा न करनी चाहिए।

(११)

संयम से गिरते हुए साधु को सत्पुरुष वोध देते हैं—हे पुरुष! तू प्राणियो को स्वयं मारता है, दूसरो से घात कराता है तथा मारने वालो का अनुमोदन करता है, "जीवो को मारो" इस प्रकार वार-वार कहता है। तू हिंसा करता है इसलिए अज्ञान है और अधर्म को चाहता है।

"धर्म का मार्ग वड़ा कठिन है।" यह समझकर तू जिनाज्ञा से वाहर होकर धर्म की उपेक्षा करता है। तू कामभोगों में मूर्च्छित और हिंसा मे तत्पर है। ऐसा मै कहता हूँ।

(१२)

जस्सिमे आरंभा सव्वओ सव्वयाए सुपरिन्नाया भवंति।

जस्सिमे लूसिणो परिवित्तसंति।

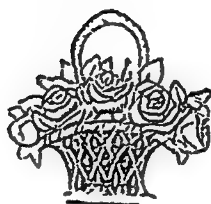
से वंता कोहं माणं मायं लोभं च,

एस तुट्टे वियाहिए त्ति बेमि।

(१२)

हिंसक लोग जिन काम-वृत्तियों से नहीं डरते, ज्ञानी पुरुष उन्हें अच्छी तरह जानकर उनसे दूर रहते हैं। वे क्रोध, मान, माया और लोभ का दमन करके अपने आप सन्तुष्ट रहते हैं।

यही मैं कहता हूँ।





-: महाप्रयाण :-

जीवियं नाभिकंखेज्जा
मरणं नो वि पत्थए
दुहओ वि न सज्जेज्जा
जीविए मरणे तहा

(१)

अणुपुव्वेण विमोहाइं,
जाइं धीरा समासज्ज,
वसुमंतो मइमंतो,
सव्वं नच्चा अणेलिसं ॥

(२)

दुविहं पि विइत्ताणं,
बुद्धा धम्मस्स पारगा ।
अणुपुव्वीए संखाए,
कम्मुणाओ तिउट्टइ ॥

(३)

कसाए पयणु किच्चा,
अप्पाहारे तिइक्खए,
अह भिक्खू गिलाएज्जा,
आहारस्सेव अंतियं ॥

(१)

बुद्धिमान्, संयमी तथा धीर मुनि सारी बातें सम्यक् प्रकार से जानकर क्रम से मोहादि को दूर करने वाले †तीन मरणों में से किसी एक मरण को स्वीकार करे।

(२)

शरीरादि बाह्य तथा रागादि आभ्यन्तर—दोनो प्रकार की वस्तुओं को जानकर धर्म के पारगामी मुनि अवसर आया जान-कर कर्म से अलग हो जाते हैं।

(३)

कषायों को क्षीण करके मुनि अल्पाहार करता हुआ सब कष्टों को सहे। यदि कभी आत्मा में ग्लानि आने लगे तो आहार छोड़ दे।

---

† तीन मरण :—साधु या श्रावक जब यह निश्चित रूप से जान लेता है कि अन्तिम समय आ गया है तो आत्मकल्याण के लिए वह सभी से क्षमाप्रार्थना करके सभी वस्तुओं से अपना ममत्व हटा लेता है। धन, धान्य, स्वजन, सम्बन्धी तथा अपने शरीर का भी मोह त्याग देता है। किसी प्रकार की आकांक्षा न करता हुआ वह आत्मलीन होकर मृत्यु को स्वीकार करता है। इसी को शास्त्रों में पण्डित-मरण कहा गया है। इसके तीन प्रकार हैं —

१—भक्त-प्रत्याख्यान मरण :—आजीवन तीनों या चारों आहारों का त्याग कर देना। इसी को भक्तप्रतिज्ञा भी कहते हैं।

२—इंगित मरण —यावज्जीवन चारों आहारों का त्याग करके केवल मर्यादित स्थान में हिलने-डुलने की छूट रखना। वह निश्चित स्थान को छोड़कर कहीं नहीं जा सकता। उसी में हाथ-पैर हिला सकता है। दूसरों से सेवा भी नहीं कराता।

३—पादपोपगमन मरण—संथारा करके वृक्ष के समान जिस स्थान पर जिस रूप में एक बार लेट जाय फिर उसी जगह उसी रूप में लेटे रहना। इसमें हाथ-पैर हिलाने की भी छूट नहीं रहती।

(४)

जीवियं नाभिकंखेज्जा,
मरणं नो वि पत्थए।
दुहओ वि न सज्जेज्जा,
जीविए मरणे तहा ॥

(५)

मज्झत्थो निज्जरापेही,
समाहि-मणुपालए।
अंतोबहिं वि उस्सिज्ज,
अज्झत्थं सुद्धमेसए ॥

(६)

जं किंचुवक्कमं जाणे,
आउक्खेमस्स अप्पणो।
तस्सेव अन्तरद्धाए,
खिप्पं सिक्खिज्ज पंडिए ॥

(७)

गामे वा अदुवा रण्णे,
थंडिलं पडिलेहिया।
अप्प-पाणं तु विन्नाय,
तणाइं संथरे मुणी ॥

(४)

न तो जीवित रहने की इच्छा करे और न शीघ्र मरना ही चाहे। जीवन तथा मरण में से किसी में भी आसक्ति न करे।

(५)

मध्यस्थभाव रखकर केवल कर्म-निर्जरा की इच्छा से †समाधि का पालन करे। आन्तरिक तथा वाह्य सभी आसक्तियों को छोड़कर शुद्ध आत्मा में रमण करे।

(६)

अचानक कोई रोग हो जाय तो समाधि चाहने वाला मुनि अपनी आयुष्य को बचाने के जो उपाय मालूम हों उन्हें अनशन के अन्दर रहता हुआ ही अङ्गीकार करे। फिर समाधि लेकर संलेखना करे।

(७)

ग्राम तथा अरण्य में भूमि प्रतिलेखन करके उसे प्राणी-रहित जानकर वहाँ घास बिछा लेवे।

---

† विचारों की समता।

(८)

अणाहारो तुयट्टेज्जा,
पुट्ठो तत्थऽहियासए ।
नाइवेलं उवचरे,
माणुस्सेहिं वि पुट्ठयं ॥

(९)

संसप्पा य जे पाणा,
जे य उड्ढमहेचरा ।
भुञ्जन्ति मंस-सोणियं,
न छणे न पमज्जए ॥

(१०)

पाणा देहं विहिंसंति,
ठाणाओ न वि उब्भमे ।
आसवेहिं विवित्तेहिं,
तिप्पमाणोऽहियासए ॥

(११)

गंथेहिं विवित्तेहिं,
आउकालस्स पारगे ।
पगहीय तरगं चेयं,
दवियस्स वियाणओ ॥

(८)

आहार का त्याग करके मुनि उस पर लेट जाय। परीषह तथा उपसर्ग आने पर उन्हें समभावपूर्वक सहे। मनुष्यों द्वारा उपसर्ग होने पर मर्यादा का उल्लंघन न करे।

(९)

पक्षी, पशु तथा सर्प आदि हिंसक प्राणी मांस खाने लगें तथा रक्त पीने लगें तो भी मुनि न उन्हें हटावे और न अपने शरीर का प्रमार्जन करे।

(१०)

ये प्राणी मेरे शरीर का ही नाश कर रहे हैं, वे आत्मा का कुछ नहीं बिगाड़ सकते, ऐसा सोचकर अङ्गीकृत स्थान को छोड़कर कहीं न जाए। कर्मबन्ध के कारणों को दूर रखकर आत्मतृप्त रहता हुआ सब कष्टों को सहे।

(११)

सभी प्रकार के ममत्व को छोड़कर मुनि अपने आयुष्यकाल को पूरा करे।

आगे बताया जाने वाला इंगित-मरण गीतार्थ मुनि द्वारा अङ्गीकार किया जाता है। इसका पालन पहले से कठिन है

(१२)

अयं से अवरे धम्मे,
नायपुत्तेण साहिए।
आय-वज्जं पडीयारं,
विजहेज्जा तिहा-तिहा ॥

(१३)

हरिएसु न निवज्जेज्जा,
थंडिलं मुणिया सए।
विओसेज्ज अणाहारो,
पुट्ठो तत्थऽहियासए ॥

(१४)

इंदिएहिं गिलायंतो,
समियमाहरे मुणी।
तहा वि से अगरिहे,
अचले जे समाहिए ॥

(१५)

अभिक्कमे पडिक्कमे,
संकुचए पसारए।
कायसाहारणट्ठाए,
एत्थं वा वि अचेयणे ॥

(१२)

ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने यह दूसरा धर्म बताया है। इसमें अपने हिलने-डुलने के अतिरिक्त शेष सारा व्यापार तीन * करण और तीन † योग से छोड़ देवे।

(१३)

हरी घास आदि पर न सोवे। ‡ स्थंडिल देखकर लेट जाए। अनाहार होकर बाह्य तथा आभ्यंतर उपाधि का त्याग कर देवे। परीषह तथा उपसर्ग आने पर उन्हें सहे।

(१४)

इन्द्रियों से आसक्त होने पर भी मुनि शान्ति रक्खे। आर्त्त-ध्यान न करे। अपने इंगित क्षेत्र में हिलने-डुलने पर भी वह निन्द्य नहीं है। समाधि में लीन रहकर किसी प्रकार का व्यवहार न करे।

(१५)

शरीर साधने के लिए मुनि मर्यादित क्षेत्र में जाए, आए, हाथ-पैर सिकोड़े तथा फैलावे। इसके अतिरिक्त अचेतन के समान पड़ा रहे।

---

* करना, कराना तथा अनुमोदन कराना।

† मन, वचन और काया।

‡ बैठने या लेटने के लिए साधु जिस भूमि को अंगीकार करता है।

(१६)

परिक्कमे परिकिलंते,
अदुवा चिट्ठे अहायए।
ठाणेण परिकिलंते,
निसीएज्जा य अंतसो॥

(१७)

आसीणे ऽणेलिसं,
मरणं इंदियाणि समीरए।
कोलावासं समासज्ज,
वितहं पाउरेसए॥

(१८)

जओ वज्जं समुप्पज्जे,
न तत्थ अवलंबए।
तओ उक्कसे अप्पाणं,
फासे तत्थऽहियासए॥

(१९)

अयं चाययतरे सिया,
जो एव-मणुपालए।
सव्वगायनिरोहे वि,
ठाणाओ न विउब्भमे॥

(१६)

यदि बैठे-बैठे या सोते हुए शरीर टूटने लगे तो सीमित क्षेत्र में यतनापूर्वक घूमने लगे। अथवा अङ्ग फैलाने के लिए खड़ा हो जाय। खड़ा-खड़ा थक जाय तो बैठ जाय या लेट जाय।

(१७)

इस प्रकार के असाधारण मरण को स्वीकार करके इन्द्रियों को विषयों से हटावे। सहारा लेने के लिए यदि कोई घुणों वाला तख्ता आदि मिल जाय तो उसका सहारा लेना पाप समझे तथा उससे दूर रहे।

(१८)

जिस किसी बात से पाप लगे उसका आश्रय न लेवे। आत्मा को उससे ऊँचा उठाये रक्खे। प्राप्त हुए कष्टों को सहे।

(१९)

आगे बताया जाने वाला पादपोपगमन ऊपर बताये हुए मरणों से भी उत्कृष्ट है। इसे अङ्गीकार कर लेने पर हिलना-डुलना भी नहीं चाहिए। सारे शरीर में वेदना होने पर भी अङ्गीकृत स्थान को न छोड़े।

(२०)

अयं से उत्तमे धम्मे,
पुव्वठाणस्स पग्गहे ।
अचिरं पडिलेहित्ता,
विहरे चिट्ठ माहणे ॥

(२१)

अचित्तं तु समासज्ज,
ठावए तत्थ अप्पगं ।
वोसिरे सव्वसो कायं,
न मे देहे परीसहा ॥

(२२)

जावज्जीवं परीसहा,
उवसग्गा इति संखाय ।
संवुडे देह-भेयाए,
इह पन्ने ऽहियासए ॥

(२३)

भेउरेसु न रज्जेज्जा,
कामेसु वहुयरेसु वि ।
इच्छा लोभं न सेविज्जा,
धुववन्नं संपेहिया ॥

(२०)

यह उत्तम धर्म है। पहले बताये गये इंगित मरण से इसमें अनुशासन की अधिक कठोरता है। स्थंडिल की प्रतिलेखना करके मुनि इसमें प्रवृत्ति करे तथा पूर्णरूप से स्थिर रहे।

(२१)

अचित्त स्थंडिल को प्राप्त करके वहाँ लेट जाय। शरीर को पूर्णरूप से त्याग दे। परीषह तथा उपसर्ग आने पर यह समझे कि ये मेरे शरीर में नही हो रहे हैं।

(२२)

जब तक जीवन है, परीषह आते ही रहेंगे—यह सोचकर संवृत एवं बुद्धिमान् साधु शरीर का नाश करने के लिए उन्हें सहे।

(२३)

उस समय विविध प्रकार के नश्वर कामभोगों में राग न करे। किसी प्रकार की इच्छा तथा लोभ को स्थान न दे अर्थात् निदान न करे। एकमात्र मोक्ष को अपना लक्ष्य बनाये रक्खे।

(२४)

'सासएहिं' निमंतेज्जा,
दिव्वं मायं न सद्दहे ।
तं पडिबुज्झ माहणे,
सव्वं नूमं विहूणिया ॥

(२५)

सव्वट्ठेहिं अमुच्छिए,
आउकालस्स पारए ।
तिइक्खं परमं नच्चा,
विमोहन्नयरं हियं ॥

---

(२४)

कोई चिरस्थायी भोगों के लिए निमन्त्रण करे अथवा दैवी माया प्रकट हो तो उस पर विश्वास न करे। हे मुनि! सर्व कर्मों का नाश करने के लिए ही मन में ध्यान करो।

(२५)

इस प्रकार इन्द्रिय-विषयों में मूर्च्छित न होता हुआ मुनि आयुष्य पूरी करे।

सहनशक्ति को प्रधान मानकर ऊपर बताये गये तीन मरणों में से किसी एक को अङ्गीकार करे, वही उसके लिए हितकर है।





दीपमाला



एस मग्गे आरिएहिं पवेइए-
उट्ठिए नो पमायए ।

(१)

एस मग्गे आरिएहिं पवेइए
उट्ठिए नो पमायए
जाणित्तु दुक्खं पत्तेय-सायं।

(२)

आवंती केयावंती लोगंसि परिग्गहावंती
से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा
चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा एएसु चेव परिग्गहावंती
एयदेवेगेसिं महब्भयं भवइ।

(३)

से सुयं च अज्झत्थं च मे,
बंध-पमोक्खो अज्झत्थेव।

(४)

पमत्ते बहिया पास,
अप्पमत्ते परिव्वए,
एयं मोणं सम्मं अणुवासेज्जासि त्ति बेमि।

(१)

आर्यों ने यही मार्ग बताया है कि संयम के लिए उद्यत होकर फिर प्रमाद न करे।

प्रत्येक प्राणी को सुख और दुःख पृथक् पृथक् भोगने पड़ते हैं। यह जानकर प्रमाद न करो।

(२)

संसार में जो लोग †परिग्रह रखते हैं वह थोड़ा हो अथवा अधिक, छोटा हो अथवा बड़ा, सचित्त हो अथवा अचित्त, उसी से वे परिग्रही हैं। वही उनके लिए भयदायी है।

(३)

मैंने सुना है, अनुभव किया है कि ‡बन्ध और *मोक्ष तुम्हारी आत्मा पर भी निर्भर है।

(४)

प्रमाद करने वाला धर्म से पराङ्मुख होता है। इसलिए मुनि अप्रमत्त रहकर विचरे।

इस मुनिधर्म का तुम सम्यक्पालन करना। यही मैं कहता हूं।

---

† किसी भी वस्तु में ममता या मोह रखना।

‡ कर्मपुद्गलों का आत्मा के साथ सम्बन्ध होना।

* कर्मपुद्गलों का आत्मा से सर्वथा अलग होना।

(५)

इमेणामेव जुज्झाहि ।
किं ते जुज्झेण वज्झओ ?
जुज्झारिहं खलु दुल्लहं ।

(६)

वितिगिच्छसमावन्नेणं अप्पाणेणं,
नो लभइ समाहिं ।

(७)

तमेव सच्चं नीसंकं
जं जिणेहिं पवेइयं ।

(८)

'समियं' ति मन्नमाणस्स 'समिया' वा
'असमिया' वा समिया होइ उवेहाए ।

(९)

'असमियं' ति मन्नमाणस्स समिया वा
असमिया वा असमिया होइ उवेहाए ।

(५)

हे मुने !

इसी शरीर से युद्ध करो। बाह्य युद्धों से तुम्हें क्या ? युद्ध के योग्य शरीर मिलना कठिन है।

(६)

जिसके मन मे संशय उत्पन्न हो जाता है, वह समाधि को प्राप्त नहीं कर सकता।

(७)

अरिहन्तों ने जो कहा है वही सत्य है। इसमें कोई शङ्का नहीं है।

(८)

जिसकी श्रद्धा सम्यक् है उसे सम्यक् या असम्यक् दोनो प्रकार की वस्तुएँ सम्यक् विचारणा के कारण सम्यक् रूप मे परिणत हो जाती हैं।

(९)

जिसकी श्रद्धा असम्यक् है उसे सम्यक् या असम्यक् दोनो प्रकार की वस्तुएँ असम्यक् विचारणा के कारण असम्यक् रूप मे परिणत हो जाती हैं।

(१०)

उड्ढं सोया अहे सोया,
तिरियं सोया विआहिया ।
एए सोया विअक्खाया,
जेहिं संगंति पासह ॥

(११)

आवट्टं तु पेहाए
एत्थ विरमेज्ज वेयवी ।

(१२)

से बेमि से जहा वि,
कुम्मे हरए विनिविट्ठचित्ते ।
पच्छन्न-पलासे उम्मग्गं,
से नो लभइ ॥

(१३)

आहारोपचया देहा, परीसह-पभंगुरा ।
पासह एगे सव्विंदियेहिं परिगिलायमाणेहिं ।
आए दयं दयति ।

(१४)

लाघवियं आगममाणे
तवे से अभि-समन्नागए भवइ ।

(१०)

ऊपर-नीचे तथा दाँयें-बाँयें सभी जगह कर्मों के स्रोत बने हुए हैं। जहाँ आसक्ति है वही कर्मबन्धन बताया गया है।

(११)

शास्त्रों के ज्ञाता को कर्मचक्र देखकर विषय-भोगों से दूर रहना चाहिए।

(१२)

जिस प्रकार शैवाल तथा पत्तो से ढँके हुए सरोवर में आसक्त कछुआ कभी ऊपर नहीं आ सकता उसी प्रकार संसार में फँसे हुए अज्ञान जीव भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते।

यही मैं कहता हूँ।

(१३)

यह शरीर आहार से बढ़ता है और परीषह आने पर क्षीण हो जाता है। देखो, बहुतसे लोग परीषह आने पर सभी इन्द्रियों से निर्बल हो जाते हैं।

पराक्रमी पुरुष परीषह आने पर भी दया नहीं छोड़ते।

(१४)

जो मुनि वस्त्र, पात्र आदि में लाघव अङ्गीकार करता है वही तपस्वी है।

(१५)

"एगो अहमंसि, न मे अत्थि कोइ
न याहमवि कस्स वि"
एवं से एगागिरण-मेव,
अप्पाणं समभि-जाणेज्जा ॥

(१६)

जे आसवा ते परिस्सवा
जे परिस्सवा ते आसवा
जे अणासवा ते अपरिस्सवा
जे अपरिस्सवा ते अणासवा
एए पए संबुज्झमाणे, लोगं च-
आणाए अभिसमेचा पुढो पवेइयं ।

---

(१५)

मैं अकेला हूँ। मेरा कोई नहीं है और न मैं ही किसी का हूँ, इस प्रकार मुनि अपने को अकेला ही समझे।

(१६)

अज्ञान जीवों के लिए जो कर्मबन्ध के कारण हैं, ज्ञानियों के लिए वे ही *निर्जरा के कारण बन जाते हैं। इसी प्रकार निर्जरा के कारण कहीं पर कर्मबन्ध के कारण बन जाते हैं। आस्रवनिरोध के कारण ही कहीं पर निर्जरानिरोध के कारण बन जाते हैं। इसी प्रकार निर्जरानिरोध के कारण आस्रवनिरोध के कारण बन जाते हैं।

इन पदों को अच्छी तरह समझकर बुद्धिमान् पुरुष भगवान् की आज्ञानुसार इस लोक को जाने और †आस्रव तथा ‡संवर के स्थानों को पृथक्-पृथक् जानकर धर्म में उद्यम करे।

---

* पूर्वसंचित कर्मों का क्षय।

† मन, वचन और काया की वह प्रवृत्ति जिससे कर्मबन्ध होता है।

‡ नये कर्मबन्ध को रोकना।



श्री जालमसिंह मेड़तवाल के प्रबन्ध से श्री गुरुकुल प्रेस, ब्यावर में मुद्रित ।

धर्म-पथ

श्री आचाराङ्ग-सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और अष्टम अध्ययन में से संकलित

अकारादि अनुक्रमणिका

			अध्ययन	उद्देशक
अचित्तं	(महा० प्र०)	२१	८	८
अच्चेइ	(तत्त्व द०)	६	५	६
अट्टा पया०	(उद्‌बोध)	७	५	१
अणाणाए	(गुरुकुल)	४	५	६
अणाहारो	(महा० प्र०)	८	८	८
अणुपुव्वेण०	(म० प्र०)	१	८	८
अणुवीइ०	(म० मु०)	१४	६	५
अदुवा तत्थ	(म० मु०)	५	६	३
अभिक्कमे	(म० प्र०)	१५	८	८
अभिभूय	(गुरु०)	५	५	६
अयं	(म० प्र०)	१२	८	८
अयं चायय-	(म० प्र०)	१६	८	८
अयं से	(म० प्र०)	२०	८	८
असमियं ति	(दीप०)	६	५	५
अह पास	(प्रव०)	७	६	१
अहस्मट्ठी	(प्रव०)	११	६	५
अहेगे धम्म	(म० मु०)	१	६	२
अहो य राओ	(उद्‌बोध)	१	४	१

आउरं	(कायर)	१	६	२
आगय-पन्नाणा	(म० मु०)	७	६	३
आघाइ	(शाश्वत)	२	४	२
आणाए	(गुरुकुल)	७	६	२
आयाण०	(उद्बोध)	६	६	१
आयावन्ती	(शाश्वत)	४	४	२
आवट्ट	(दीपमाला)	११	५	६
आवीलए	(उद्बोध)	५	४	४
आवन्ती	(ज्ञानी)	२	५	०
आवन्ती	(ज्ञानी)	३	५	३
आवन्ती	(ज्ञानी)	७	५	१
आवती	(दीपमाला)	२	५	२
आमीणं	(म० प्र०)	१७	८	८
आहारोपचया	(दीप०)	१३	८	३
इमेणमेव	(दीप०)	५	५	३
इमं निरुद्धा-	(उद्बोध)	४	४	३
इहआणा	(उद्बोध)	३	४	३
इहमेगेसि	(शाश्वत)	३	४	२
इह मेगेसि	(ज्ञानी०)	६	५	१
इह मेगेसि	(म० मु०)	२	६	२
इन्दिएहिं	(म० प्र०)	१४	८	८
उड्ढं सोया	(दीप०)	१०	५	६
उव्वाहिज्जमाणे	(राजमार्ग)	१०	५	४
उवेह एणं	(उद्बोध)	२	५	३
उवेहमाणे	(प्रवचन)	५	५	५
एगया गुण	(राजमार्ग)	६	५	४

एगे अहमंसि	(दीपमाला)	१४	८	६
एत्थ विरए	(राजमार्ग)	६	४	२
एयं नियाय	(राजमार्ग)	७	४	३
एवं खु मुणी	(म० मु०)	२	६	३
एवं ते सिस्सा	(कायर)	३	६	४
एस मग्गे	(दीपमाला)	१	४	८
एस म०	(ज्ञानी)	५	४	६
ओए समिय	(म० मु०)	१३	६	४
ओबुज्झमाणे	(ज्ञानी०)	६	६	१
कसाए	(म० प्र०)	३	८	८
कायस्स	(राजमार्ग)	१२	६	४
किमणेण भो !	(कायर)	७	६	४
गामाणुगाम	(गुरु०)	१	४	५
गामे वा	(म० प्र०)	७	८	८
गंढी	(प्रवचन)	८	६	१
गन्थेहिं	(म० प्र०)	११	८	८
चिच्चा सव्व	(राजमार्ग)	११	६	२
जओ वज्ज	(म० प्र०)	१८	८	८
जस्स नत्थि०	(शाश्वत)	८	४	१
जस्स नत्थि पुरा	(प्रवचन)	२	५	५
जस्सिमे	(प्रवचन)	१२	६	५
जहेत्थ कुसलेहिं	(तत्त्वदर्शन)	२	४	३
जहेयं	(म० मु०)	६	६	३
जावज्जीव	(म० प्र०)	२२	८	८
जीवियं	(म० प्र०)	५	८	८
जे अचेले	(म० मु०)	५	३	३

जे असत्ता	(राजमार्ग)	२	५	
जे आया	(तत्त्वदर्शन)	५	५	
जे आसवा	(दीपमाला)	१६	४	
जे खलु	(म० मु०)	१७	४	
जे छेए	(राजमार्ग)	१३	५	
जे पुव्वुट्ठाई	(ज्ञानी०)	११	५	
जे सन्निहाण०	(म० मु०)	१५	८	
जं किंचु०	(म० प्र०)	६	८	
णेत्तेहिं	(प्रवचन)	१	४	
तत्थ जे आ०	(शाश्वत)	५	४	
तमेव सच्चं	(दीपमाला)	७	५	
तम्हा मगति०	(उद्बोध)	११	६	
तुमंसि	(उद्बोध)	८	५	
तं अणवकंख०	(म० मु०)	११	६	
तं आइत्तु	(शाश्वत)	६	४	
न परक्कमंत	(उद्बोध)	१०	६	
दिट्ठ सुयं	(शाश्वत)	११	४	
दुविह	(म० प्र०)	२	८	८
नममाणा	(कायर)	६	६	४
निद्दमं	(गुरुकुल)	६	५	६
नियट्टमाणा	(कायर)	५	६	४
पमत्ते	(दीपमाला)	४	५	२
परिक्कमे	(म० प्र०)	१७	८	८
पाणा	(म० प्र०)	१०	८	८
पासह	(उद्बोध)	६	५	१
पुढो छन्दा	(तत्त्वदर्शन)	१	५	२

पुव्वंनिकाय	(शाश्वत)	७	५	२
बहुदुक्खा	(प्रवचन)	१०	६	१
भुजंगा इव	(प्रवचन)	६	६	१
भेउरेसु	(म० प्र०)	२३	८	८
मज्झत्थो	(म० प्र०)	५	८	८
मज्झिमेणं	(राजमार्ग)	१५	८	२
मुणी मोणं	(तत्त्वदर्शन)	३	५	३
लाघवियं	(दीपमाला)	१४	८	५
लोगवित्तं	(राजमार्ग)	४	५	२
वण्णाएसी	(राजमार्ग)	८	५	३
वत्थं	(कायर)	२	६	२
वयसावि	(गुरुकुल)	२	५	५
वयं पुण	(शाश्वत)	६	५	२
वितिगिच्छा	(दीपमाला)	६	५	५
विरयं	(म० मु०)	९	६	३
सड्ढिस्स	(ज्ञानी०)	१०	५	५
समियाए	(प्रवचन)	४	५	३
समियंति	(दीपमाला)	८	५	५
समुप्पेहमाणे	(राजमार्ग)	३	५	२
समेमाणा	(शाश्वत)	१०	५	१
सव्वट्ठेहिं	(म० प्र०	२५	८	८
सासएहिं	(म० प्र०)	२४	८	८
सियावेगे	(म० मु०)	८	५	५
सीलमंता	(कायर)	४	६	४
से अभि	(गुरुकुल)	३	५	४
से अवि	(राजमार्ग)	१	५	२

से गिहेसु	(म० मु०)	१२	६
से पभूय-	(तत्त्वदर्शन)	४	५
से पासइ	(ज्ञानी०)	८	५
से बेमि	(शाश्वत)	१	४
से बेमि	(म० मु०)	१८	५
से बेमि	(दीपमाला)	१२	६
से भिक्खू	(म० मु०)	१६	८
से वसुमं	(ज्ञानी)	४	५
से सुप्पडि	(राजमार्ग)	५	५
से सुयं च	(दीपमाला)	३	५
से हु मन्ना	(ज्ञानी)	१	४
संति	(प्रवचन)	६	६
संधेमाणे	(म० मु०)	१०	६
संसप्पा	(म० प्र०)	६	८
संसयं	(प्रवचन)	३	५
हरिएसु	(म० प्र०)	१३	८